ह्रीः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

A Review of rare buddhist texts

11

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
1991

ह्रीः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

11

सम्पादक

प्रो० एस० रिनपोछे
योजना निदेशक

प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी
उपनिदेशक

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३५ बुद्ध पूर्णिमा ख्रीस्ताब्द १९९१

११वाँ अंक ५५० प्रतियाँ, १९९१

मूल्य : रु० ५५.

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी-२

Dhīḥ

A Review of rare buddhist texts

11

Editors

PROF. SAMDHONG RINPOCHE
Project Director

PROF. VRAJVALLABH DWIVEDI
Deputy Director



भोटविद्या संस्थानम्

RARE BUDDHIST TEXT RESEARCH PROJECT

Central Institute of Higher Tibetan Studies

SARNATH, VARANASI

B. E. 2535 **BUDDHA PŪRṆIMĀ** **C. E. 1991**

Vol. XI 550 Copies, 1991

Price : Rs. 55.

Published by :
Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi

Printed by :
Shivam Printers, C 27/273 Indian Press Colony, Maldahiya, Varanass-2

धीः XI

विषयानुक्रमणी

•

रात्रौ यथा मेघघनान्धकारे
विद्युत् क्षणं दर्शयति प्रकाशम् ।
बुद्धानुभावेन तथा कदाचि-
ल्लोकस्य पुण्येषु मतिः क्षणं स्यात् ।।

—बोधिचर्यावतार १.५

सप्ताक्षरस्तोत्रम्

[यह स्तोत्र स्व० श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त हुआ है।]

ॐ नमो लोकनाथाय मत्स्येन्द्राय विष्णवे

नमामि जिननाथाय नित्यानित्यविधायिने।
निरम्बरविलासाय निर्विकल्पाय ते नमः ॥ 1 ॥

मोक्षदाता कृतमोक्षो मोक्षसौख्यप्रदायकः।
मेरुमण्डलमध्यस्थमोक्षदाय नमोऽस्तु ते ॥ 2 ॥

लोलकन्दर्पपाशाय लोकेशाय महात्मने।
लोकरक्षाय देवाय लोकनाथाय ते नमः ॥ 3 ॥

कनकाचलमध्यस्थकिन्नरैरुपपद्यते।
कीर्तिहेतोः समाध्येष कान्तिदं त्वामुपास्महे ॥ 4 ॥

नाथमन्त्रसमुज्ज्वालनागाभरणधारिणे।
निरवद्याय बुद्धाय बोधिदाय नमोऽस्तु ते ॥ 5 ॥

स्थानरक्षाकृता धीर ! स्थानभ्रष्टप्रपालक !।
लोचना-मामकी-तारा-पाण्डराभ्यो नमो नमः ॥ 6 ॥

यक्षराक्षसवेतालभुजङ्गभयहारिणे।
अमिताभकिरीटाय सिद्धिदाय नमोऽस्तु ते ॥ 7 ॥

भिक्षुरोमसहस्राणि भिक्षुरक्षाय ते नमः।
श्लोकाष्टकमिदं पुण्यं कीर्तितं ते समाधिप ॥ 8 ॥

॥ इति श्रीमदार्यावलोकितेश्वरस्य सप्ताक्षरस्तोत्रं समाप्तम् ॥

चण्डिकादण्डकस्तोत्रम्

[यह स्तोत्र इण्डियन एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से प्राप्त 'धारिणी मन्त्र आदि संग्रह' नामक प्रकीर्ण पत्रों के संग्रह से उपलब्ध हुआ है।]

ॐ नमः श्रीचण्डिकायै।

ऊं ऊं ऊं उग्रचण्डं चचकितचकितं चंचरा(ला)द्दुर्गनेत्रं
हूं हूं हूंकाररूपं प्रहसितवदनं खड्गपाशान् धरन्तम्।
दं दं दं दण्डपाणिं डमरुडिमिडिमां डण्डमानं भ्रमन्तं
भ्रं भ्रं भ्रं भ्रान्तनेत्रं जयतु विजयते सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 1 ॥

घ्रं घ्रं घ्रं घोररूपं घुघुरितघुरितं घर्घरीनादघोषं
हुं हुं हुं हास्यरूपं त्रिभुवनधरितं क्षे(खे)चरं क्षेत्रपालम्।
भ्रूं भ्रूं भ्रूं भूतनाथं सकर(ल)जनहितं तस्यदेहा(?)पिशाचं
हूं हूं हूंकारनादैः सकलभयहरं सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 2 ॥

व्रं व्रं व्रं व्योमघोरं भ्रमति भुवनता(तः) सप्तपातार(ल)तारं(लं)
क्रं क्रं क्रं कामरूपं धधकितधकितं तस्य हस्ते त्रिशूरं(लम्)।
द्रुं द्रुं द्रुं दुर्गरूपं भ्रमति च चरितं तस्य देहस्वरूपं
मं मं मं मन्त्रसिद्धं सकलभयहरं सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 3 ॥

झं झं झंकाल(र)रूपं झमति झमझमा झंझमाना भ्रमस्ता(न्तः)
कं कं कंकारधारी घुघुरितघुरितं धुन्धुमारी कुमारी।
धूं धूं धूं धूम्रवर्णा भ्रमति भुवनतः कालपाशांस्त्रिशूलं
तं तं तं तीव्ररूपं मम भयहरणं सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 4 ॥

रं रं रं रायरुद्रं रुरुधितरुधितं दीर्घजिह्वाकला(रा)लं
पं पं पं प्रेतरूपं समयविजय(यि)नं सुम्भदम्भे निसुम्भे।
संग्रामे प्रीतियाते जयतु विजयते सृष्टिसंहाल(र)काली(री)
ह्रीं ह्रीं ह्रींकारनादे भवभयहरणं सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 5 ॥

हूंकारी कार(ल)रूपी नरपिश(शि)तमुखा सान्द्ररौद्रारजिह्वे
हूंकारी घोरनादे परमशिरशिखा हारयि(ति) पिङ्गरा(ला)क्षे।
पङ्के जाताभिजाते चुरु चुरु चुरुते कामिनी काण्डकण्ठे
कङ्काली कालरात्री भगवति वरदे सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 6 ॥

छ्रीं छ्रीं छ्रींकारनादे त्रिभुवननमिते घोरघोरातिघोरं
कं कं कं कालरूपं घुघुरितघुरितं घुं घुमा बिन्दुरूपी।
धूं धूं धूं धूम्रवर्णा भ्रमति भुवनतः कालपाशत्रिशूलं
तं तं तं तीव्ररूपं मम भयहरणं सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 7 ॥

ह्रीं ह्रीं ह्रींकाश(र)वृन्दे प्रचरितमहसा वामहस्ते कपालं
खं खं खं खड्गहस्ते डमरुडिमिडिमां मुण्डमालासुशोभाम्।
रुं रुं रुं रुद्रमालाभरणविभुषिता दीर्घजिह्वा कराला
देवी श्री उग्रचण्डी भगवति वरदे सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥ 8 ॥

मारुणवर्णसङ्काशा खड्गफेटकबिन्दुका।
कामरूपी महादेवी उग्रचण्डी नमोऽस्तु ते ॥ 9 ॥

॥ इति चण्डिकादण्डकस्तोत्रं समाप्तम् ॥

दुर्लभ ग्रन्थ परिचय

—जनार्दन पाण्डेय—

['धी:' के प्रस्तुत अङ्क में निम्नलिखित 7 दुर्लभ ग्रन्थों का परिचय दिया जा रहा है—

1. लघुतन्त्र टीका-वज्रपाणि कृत
2. संवरोदयटिप्पणी
3. कालचक्रभगवत्साधनविधि—महापण्डित धर्माकर शान्तिपाद कृत
4· नैरात्मादेवीहृदयमन्त्र
5. रहस्यकल्लोलिनी
6. वसुधाराकल्प
7. धारिणी मन्त्र आदि (प्रकीर्ण पत्र) संग्रह

इसके अन्तर्गत 18 पूर्ण और 9 अपूर्ण पुस्तकों का विवरण है]

१. लघुतन्त्रटीका

ग्रन्थ— लघुतन्त्रटीका
ग्रन्थकार— वज्रपाणि
संख्या— 5/109
पत्रसंख्या— 1-51, पंक्ति प्र० प०-9, अक्षर प्र० पं०-65
आधार— नेपाली कागज, लिपि-देवनागरी, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीचक्रसंवराय।

येनाक्रान्तः पिनाकी हिमगिरितनयावामसव्याङ्घ्रिणार्के
देवा भूताः सुरेन्द्रा ग्रहगणसहितास्त्रासिताः क्रोधदृष्ट्या।
मुद्रेत (?) व्याघ्रचर्मोरगपतिनर(व)कं मुण्डमाला धृता [च]
तं नत्वा तन्त्रटीका स्फुटकुलिशपदाऽन्वेषिका लिख्यते सा ॥ 1 ॥

वीरेण चोदितेनैषा मया श्रीवज्रपाणिना।
योगिनां पुण्यलाभाय महामुद्राफलाप्तये ॥ 2 ॥

अथात उद्धृतः सारस्तन्त्राल्लक्षाभिधानतः ।
श्रीहेरुकमहायोगो डाकिनीचक्रसंवरः ॥ 3 ॥

काले पञ्चकषायेऽस्मिन् पुण्यज्ञानफलाप्तये ।
वाराह्याध्येषितो वज्री लघुतन्त्रं प्रकाशयेत् ॥ 4 ॥

अन्त

एवं सर्वलघुतन्त्रोक्तार्थः प्रधानमूलतन्त्रेण बोधिसत्त्वकृतटीकया वा षट्कोटयर्थ-देशक्या देशान्तरं दक्षिणोत्तरं गत्वा सर्वमेतज्ज्ञातव्यम् । न पुनः पण्डिताभिमाना-भिमानभूतैः कृतटीकया गुह्यार्थो वितन्यते भगवता तन्त्रोक्तः ।

इह लघुतन्त्रटीकायां संक्षेपेण पिण्डार्थः प्रकटीकृतः । विस्तरतन्त्रटीकायां विस्तरे-णावगन्तव्यो वीर्यवद्भिरिति भगवतो नियमः ॥

पुष्पिका

इति लक्षाभिधानादुद्धृते लघ्वभिधाने पिण्डार्थविवरणं नाम प्रथमष्टीका-परिच्छेदः ॥

विवरण

इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त हुई है, जिसे उन्होंने राष्ट्रीय अभिलेखालय नेपाल से प्रतिलिपि करवाया है और जो फुलस्केप साइज के 164 पृष्ठों में है। इसी से यह विवरण दिया जा रहा है। ग्रन्थकार ने लिखा है—"तेन श्रीहेरुकभगवता मूलतन्त्राल्लक्षाभिधानात् सारं सप्तशतग्रन्थप्रमाणं तन्त्रं देशितम्" (ल० तं० टीका, पत्र 4) । अर्थात् लक्षाभिधान मूलतन्त्र से सारभूत 700 श्लोकों को उद्धृत कर भगवान् हेरुक ने इस लघुतन्त्र को प्रकट किया, जिसकी मैं टीका कर रहा हूँ। यद्यपि इस प्रकार के बड़े ग्रन्थों से मुख्य सार लेकर संक्षेप किये गये सभी ग्रन्थ लघुतन्त्र कहलाते हैं, जैसा कि सेकोद्देश-टीकाकार ने उद्देशनिर्देश की व्याख्या करते हुए कहा है—

'उद्देशनिर्देशौ द्वावेव तन्त्रसंगीतिः। तत्रोद्देशेन संगीतिः समस्तलघुतन्त्रम्, यथाऽष्टादशशतग्रन्थश्रीसमाजादिका । निर्देशेन संगीतिः सकलमूलतन्त्रराजदेशना, यथा पञ्चविंशतिसहस्रश्रीसमाजादिका" (द्र० बौद्ध तन्त्रकोष, पृ० 17)

इसी प्रकार यह भी लक्षाभिधान मूलग्रन्थ का सार लेकर 700 श्लोकों का लघुतन्त्र है। इसका नाम या मूलस्वरूप हमें अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है,

जिसकी यह टीका है। यद्यपि टीकाकार ने बीच-बीच में मूल के प्रतीक दिये हैं, किन्तु इसकी प्रतिपादन शैली ऐसी है कि उन प्रतीकों की अपेक्षा किये बिना भी यह अपने में स्वतन्त्र ग्रन्थ सा प्रतीत होता है।

अन्तिम पुष्पिका में—"पिण्डार्थविवरणं नाम प्रथमष्टीकापरिच्छेदः" लिखा है, परन्तु प्रारम्भ में जिन प्रतिपाद्य विषयों का उल्लेख किया है उनमें पिण्डार्थ-विवरण के बाद भी बहुत से विषय गिनाये गये हैं। इससे लगता है कि संभवतः इसके अन्य परिच्छेद भी लिखे गये हों।

विषय वस्तु

उपलब्ध ग्रन्थ में प्रतिपादित विषयवस्तु संक्षेप में इस प्रकार है—

इस ग्रन्थ में निम्नांकित ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये हैं—

ग्रन्थ	पत्र
आदिबुद्धतन्त्र	39,50
डाकिनीवज्रपञ्जर	3,40,42,43
तन्त्रान्तर	3,11,46
नामसंगीति	3
परमादिबुद्धतन्त्र	38,39
मायाजालतन्त्र	6,40,43
मूलतन्त्र	4,11,26
योगयोगिनीतन्त्र	2
लक्षाभिधान	3,11,26
श्रीसमाजतन्त्र	2,44,45
समयपरिच्छेद	50
समाजोत्तरतन्त्र	42,43,44
हेवज्रतन्त्र	2,11

2. संवरोदयटिप्पणी

ग्रन्थ—संवरोदयटिप्पणी
संख्या—
पत्रसंख्या—67, **पंक्ति प्र० प०**-12, **अक्षर प्र० पं०**-52
आधार—नेपाली कागज, लिपि-नेवारी, पूर्ण ?

प्रारम्भ

ॐ नमः श्री चक्रसंवराय ।

नमस्कृत्य गुरुं भक्त्या सदाम्नायानुसारिणी ।
संवरोदयतन्त्रस्य टिप्पणी क्रियते मया ।।

तत्र प्रथमतः प्रवृत्ताङ्गतयाऽस्य प्रयोजनादिकं तावदभिधीयते। इहायं तन्त्रराजस्त्रयस्त्रिंशत्पटलात्मकोऽभिधानक्रमद्वयस्वरूपो हेतुफलात्मा भगवानभिधेयः। तयोरभिधानाभिधेयलक्षणः सम्बन्धः। विनेयजनानां तत्रास्थाप्रतिपत्तिः प्रयोजनं महामुद्रासिद्धिस्तत्प्रयोजनमिति समुदायपाठः। अवयवा''' एवमिति वक्ष्यमाणवन्नान्यः। मयेति मयैव साक्षान्न परम्परया। श्रुतमिति न कृतं न चानुकृतमिति गाम्भीर्यम्।

अन्त

नानाविमुक्तिकाः सत्त्वाश्चर्या नानाविधोदिताः।
नाना नयविनेयानां.................. दर्शिताः॥

गम्भीरधर्मनिर्देशे नाधिमुक्तिकरा यदि।
प्रतिक्षपणकर्तुर्या अचिन्त्या सर्वधर्मता॥

शून्यताकरुणाभिन्न...............................।
..............................डाकिनीवृन्दमाश्रितम्॥

तावता न विमुक्तिस्तु तत्र सर्वरता इव।
सर्वडाकिनीसमायोग(गे) श्रीहेरुकपदस्थिता॥

पुष्पिका

श्री[त्रिलक्षा]भिधानमहायोगतन्त्रराजे त्रिलक्षोद्धृतसहजोदयकल्पे श्रीमहासंवरोदयतन्त्रराजे सर्वयोगिनीरहस्यपठितसिद्धस्त्रयस्त्रिंशत्तमः पटलः समाप्तः॥ ये धर्मा०॥

विवरण

इस ग्रन्थ की फोटो प्रति श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से उपलब्ध हुई है। संभवतः उन्होंने किसी व्यक्तिगत संग्रह से ही यह फोटो करवाई है, क्योंकि इसमें किसी ग्रन्थालय का क्रमाङ्क नहीं है। प्रति पूर्ण है, किन्तु बीच-बीच में कहीं पद या वाक्य छूटे हैं, जहाँ.........यह संकेत दिया गया है। इसी के आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है।

इसमें केवल टिप्पणी है, मूल नहीं। मूल संवरोदय तन्त्र का विवरण हम दुर्लभ **ग्रन्थ परिचय** (भाग 1) नामक ग्रन्थ के पृष्ठ 230 पर हेरुकतन्त्र नाम से दे चुके

हैं तथा संवरोदयटिप्पणी नाम से भी उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ 224 पर इसके मृत्युवञ्चन नामक केवल 19वें पटल का विवरण आ चुका है। Saṁvarodaya Tantra Selected Chapters नाम से इसके चुने हुए 19 पटलों को तिब्बती और अंग्रेजी अनुवाद के साथ Shinichi Tsuda ने टोकियो से 1974 में प्रकाशित किया है।

विषय वस्तु

इसकी पुष्पिकाओं में यद्यपि इति प्रथमपटलव्याख्या, इति द्वितीयपटलव्याख्या आदि से केवल पटल संख्या ही दी गई है, परन्तु प्रत्येक पटल के प्रारम्भ में उस पटल में प्रतिपाद्य विषय का संकेत कर दिया है। उसके अनुसार इसमें निम्न विषय प्रतिपादित हैं—

प्रथम	अध्येषणा पटल
द्वितीय	उत्पत्तिक्रमनिर्देश पटल
तृतीय	उत्पन्नक्रमनिर्देश पटल
चतुर्थ	चतुर्भूतपञ्चाकारषड्विषयदेवताविशुद्धि पटल
पञ्चम	चन्द्रसूर्यक्रमोपदेश पटल
षष्ठ	पथपञ्चकनिर्देश पटल
सप्तम	नाडीचक्रक्रमोपाय पटल
अष्टम	समयसंकेतविधि पटल
नवम	च्छोमपीठसंकेतभूमिनिर्देश पटल
दशम	कर्मप्रसरोदय पटल
एकादश	मन्त्रजापनिर्देश पटल
द्वादश	अक्षमालानिर्देश पटल
त्रयोदश	हेरुकोदयनिर्देश पटल
चतुर्दश	वज्रयोगिनोपूजाविधिनिर्देश पटल
पञ्चदश	पात्रलक्षणनिर्देश पटल
षोडश	पञ्चामृतसाधननिर्देश पटल
सप्तदश	मण्डलसूत्रपातनविधिनिर्देश पटल
अष्टादश	अभिषेक पटल
एकोनविंश	मृत्युवंचननिमित्त-उत्क्रान्तियोग पटल
विंश	चतुर्युगनिर्देश पटल

एकविंश	चर्याव्रतनिर्देश पटल
द्वाविंश	देवप्रतिष्ठाविधि पटल
त्रयोविंश	होमनिर्देश पटल
चतुर्विंश	कर्मप्रसरौषधिप्रयोगनिर्देश पटल
पञ्चविंश	रसायनविधि पटल
षड्विंश	वारुणीनिर्देश पटल
सप्तविंश	मन्त्रोद्धारणविधि पटल
अष्टाविंश	होमविधि पटल
एकोनत्रिंश	तत्त्वनिर्देश पटल
त्रिंश	चित्रादिरूपलक्षणनिर्देश पटल
एकत्रिंश	चतुर्योगिनीनिर्देशक्रमबोधिचित्तसंक्रमण पटल
द्वात्रिंश	वल्युपहारनिर्देश पटल
त्रयस्त्रिंश	सर्वयोगिनीविपठितसिद्धि पटल

3. **श्रीकालचक्रभगवत्साधनविधिः**

ग्रन्थ—श्रीकालचक्रभगवत्साधनविधि
ग्रन्थकार—महापण्डित धर्माकरशान्तिपाद
संख्या—रील नं० ई० 1104/5
पत्रसंख्या—48
आधार—नेपाली कागज, लिपि-नेवारी, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीकालचक्राय

श्रीमांस्त्रैलोक्यनाथः परमसुखमयः सर्वकल्पप्रहीणः
संहारस्फारहेतुर्भवसमसमदृग् जन्मरा(ना)शप्रमुक्तः।
हुङ्काराद्यैश्च जातो जनहृ[द]यवशाद्वेष्टितो म(मा)ण्डलेयैः
सत्याभ्यासं स्थितो यः परमकरुणया तं प्रणम्यादिबुद्धम्॥

संगीतं मञ्जुवज्रेण लोकेश्ये(शे)नास्य टीकया।
व्याख्यातं साधनं तौ च नतो(त्वो)द्धृत्य लिखामि तद्॥

न ग्रन्थकरणे शक्तिः कृतस्योद्धृतिकौशलम्।
क्षमन्तामिति धीमन्तो भावनार्थमिदं मम॥

आदौ तावन्मन्त्री श्रीगुरुजिनसुताराधनपरायणः पटादिगतभगवत्परमादिजिनपुरः पूजाविध्यभिहितपूजामण्डलकरणपुरःसरनिर्भरभक्तिशक्तिविरचितयथोक्तनमस्कारादिबाह्यमहोदारादिपूजादिकः संयतेन्द्रियनिकरः ...

अन्त

यथा विसर्जयेत्तथा चाहुः। विसर्जनकाले गुह्यचक्रे हुंकारे क्रोधचक्रं प्रवेशयेदिति। उष्णीषे अंकारे शून्यकृत्स्नादिकम्, ललाटे ईकारे दिक्पालचक्रम्। कण्ठे भुकारे ग्रहचक्रम्, हृदये उकारे नागचक्रम्, नाभौ लृकारे भूतचक्रं प्रवेशयेदिति विसर्जनमिति।

श्रीलोकनाथ तव भाषितमुद्धृतं यद्
द्वारेण मूढमतिना स्मरणाय नाथ।
तन्मे प्रसीद करुणार्द्रमते क्षमस्व
तातो यथा स्वसुतचापलसंसहिष्णुः॥

पुष्पिका

इति श्री[म]ल्लोकेश्वरनिर्माणपुण्डरीकविरचितविमलप्रभोद्धृतः श्रीकालचक्रभगवत्साधनविधिः समाप्तः।

कृतिरियं क्ष्मापाल-गोपाल-किरातकोटिघटितचरणसरसिज-महापण्डितधर्माकरशान्तिपादानाम्॥

विवरण

यह ग्रन्थ प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से उपलब्ध हुआ है, जिसे उन्होंने नेपाल जर्मन मैनुस्क्रिप्ट प्रिजर्वेशन सेंटर, काठमाण्डू से फुलस्केप साइज के 69 पृष्ठों में नेवारी से देवनागरी में प्रतिलिपि करवाया है। इसी के आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है।

विषय वस्तु

इसमें सुप्रसिद्ध कालचक्र तन्त्र की पुण्डरीक कृत विमलप्रभा टीका के आधार पर कालचक्र की साधनापद्धति दी गई है। ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है— 'श्रीमञ्जुवज्र ने जिस कालचक्र की संगीति की और व्याख्याकार ने उसकी जो व्याख्या की, उसी को मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ' (श्लोक 2)। इसका क्रम इस प्रकार है—

4. नैरात्मादेवीहृदयमन्त्रस्तोत्रम्

ग्रन्थ—नैरात्मादेवीहृदयमन्त्रस्तोत्र
संख्या—MBB-II-212
पत्र संख्या—1-4, पंक्ति प्र० प०—7, अक्षर प्र० पंक्ति—31
आधार—नेपाली कागज, लिपि—दे० ना०, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्री नैरात्मादेव्यै।

ॐ भगवति दिगम्बरा मुक्तकेशोर्ध्वपादा दिनकरभास्वरस्य मुद्रिता मन्द्रिता राज्ञी निखिलभवहस्ता सिद्धिसंबोधिदात्री प्रणमितजिनधात्री नैरात्मा हिता

एकमुखा मुक्तकेशा त्रिनेत्रा चारुरक्षणा द्विभुजा सव्ये पात्रं वामे खट्वाङ्गं बिन्दु-
द्विपादपर्यङ्के नन्दं कुङ्कुमवर्णम्—

अन्त

ॐ गुह्येश्वरीदेवतायै श्रीनैरात्मादेवी फ फ फ फ फ ट् ट् ट् ट् ट् हूँ हूँ हूँ हूँ हूँ
स्वाहा ॐ आ हूं फट् 2 महामाया गुह्येश्वरीये हूँ फट् 2 स्वाहा।

पुष्पिका

इति श्रीवज्रनैरात्मादेवीहृदयमन्त्रस्तोत्रं समाप्तम्। शुभम्।

विवरण

इसकी माइक्रोफिश प्लेट इंडियन एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजंस न्यूयार्क से
प्राप्त शान्तरक्षित ग्रन्थालय में उपलब्ध है, जिसके आधार पर यह विवरण तैयार
किया गया है

इसमें केवल मन्त्रात्मक स्तोत्र है।

5. रहस्यकल्लोलिनी

ग्रन्थ—रहस्यकल्लोलिनी
संख्या—MBB-II-136
पत्रसंख्या—18, पंक्ति प्र० प०—6, अक्षर प्र० पं०—32
अधार—नेपाली कागज, लिपि—नेवारी, अपूर्ण।

प्रारम्भ

श्रीगुरवे नमः। पुष्पमाहात्म्यम्। अथ पश्चिमाम्नाये।

जाती च पाटली यूथी चम्पकैः श्वेत उत्पलैः।
केतकी हेमजाती च मुञ्जालैः शतपत्रकैः॥

बन्धूकपद्मकुन्दाख्यैः शालपुष्पैश्च पाटलैः।
कुसूलैः किंशुकैः पुष्पैः पुन्नागनागकेसरैः॥

बकुलैस्तूत्पलैश्चान्यैरर्धकुन्दाख्यसंभवैः।
काशशब्दोद्भवैर्देवि त्रिसंख्यैः कर्णिकारकैः॥

अन्त

एवं बन्धूकपुष्पस्य । अथ मोक्षफलप्राप्तिकाम एभिर्बन्धूकपुष्पैः श्रीत्रिपुर० । राजिकापुष्पस्य अत्र रिपुनाशाय प्रियफलप्राप्तिकाम एभिः पुष्पैः महात्रिपुरसुन्दरीदेवीमहं पूजयिष्ये । उत्पलस्य अथ धनवृद्धिफल—

पुष्पिका

ग्रन्थ अपूर्ण है, अतः पुष्पिका नहीं है, किन्तु 16 वें पत्र में "नीलसरस्वती ऊर्ध्वाम्नाय । ते च मते.........च्छाय विधि तन्त्रमन्त्रवास्यन्नया समाप्त" यह अवान्तर पुष्पिका दी है ।

विवरण

यह माइक्रोफिश प्लेट इण्डियन एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलीजंस न्यूयार्क से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर विवरण दिया जा रहा है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि रहस्यकल्लोलिनी नामक कोई बड़ा ग्रन्थ है, जिसका उपलब्ध यह अंश पुष्पमाहात्म्य है ।

विषय वस्तु

इसमें विभिन्न पुष्पों का वर्णन है और किस देवता को, किस कामना के लिये, कौन सा पुष्प, किस मन्त्र से चढ़ाया जाय और कौन सा पुष्प किस देवता के लिये निषिद्ध है, यह विस्तार से बताया गया है। देवताओं और पुष्पों का विवरण पश्चिम, उत्तर, पूर्व, दक्षिण आम्नाय के क्रम से किया गया है । ग्रन्थ अत्यन्त रोचक है किन्तु अपूर्ण है। उपलब्ध अंश में हाहारावतन्त्र, महाकालसंहिता, ताराभक्तिसुधार्णव तथा भावचूड़ामणि ग्रन्थों का प्रमाणरूप में उल्लेख है ।

6. वसुधाराकल्पः

ग्रन्थ — वसुधाराकल्प
संख्या—MBB-II-6
पत्रसंख्या—19 (1-13, 15·16, 18—21) पंक्ति प्र० प०—5, अक्षर प्र० पं०—43
आधार—नेपाली कागज, लिपि—नेवारी, अपूर्ण ।

प्रारम्भ

वसुधारायै नमः

या संस्मृता सूरिभिः सुष्ठुतरं प्रवृद्धं दारिद्रयदुःखदुरितं शमयेन्नराणाम् ।
तां कल्पवृक्षसदृशीं वसुधारमहं भक्त्या नमामि शिरसा जगतां हिताय ॥

रत्नाकरो रत्ननिधानकोऽसौ विचित्ररत्नां प्रतिभासमर्थाम् ।
रत्नावलीरत्नविचित्रभावचर्यां नमामि सततं वसुधारधाराम् ॥

तां रत्नपाणिसफलामवतोषयन्तीं त्यागावतंसहरशेखरमुद्वहन्तीम् ।
हाराद्धंहारचलकुण्डलभूषिताङ्गीमार्यां नमामि वसुवृष्टिकरीं शुभास्याम् ॥

अन्त

अथ खलु भगवानायुष्मन्तमामन्त्रयत गच्छ त्वमानन्द स्वगृहपतेरागारं पश्य परिपूर्णं सर्वधनधान्यसमृद्धं सर्वरत्नसुवर्णसर्वोपकरणैश्च महाकोषराशिभिः परिपूर्णानि, इमं धर्मपर्यायं भगवतो मुखाच्छ्रुत्वा हृष्टः तुष्टः उदग्रमना प्रमुदितः प्रबभूव ।

पुष्पिका

इति श्रीवसुधाराविकल्पः समाप्तः ।

विवरण

इसकी माइक्रोफिश प्लेट भी इंडियन एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में उपलब्ध हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया गया है ।

विषय वस्तु

इसमें दरिद्र गृहपति सुचन्द्र का दारिद्रय दूर करने के लिये आनन्द द्वारा भगवान् सुगत से प्रार्थना और भगवान् द्वारा धनसंपत्ति की वर्षा करनेवाली वसुधारा की आराधना बताई गई है ।

7. धारिणी मन्त्र आदि संग्रह

ग्रन्थ—धारिणी मन्त्र आदि संग्रह
संख्या—W.G.S.—15

फोटो पत्र संख्या—62 (गणनया)
आधार—नेपाली कागज, लिपि—देवनागरी और नेवारी

विवरण

यह ग्रन्थ एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में माइक्रोफिश रूप में आया है। यह कई ग्रन्थों के प्रकीर्ण पत्रों का संग्रह है। इन पत्रों के फोटो लेने में न कोई क्रम है, न व्यवस्था, कई पत्रों के 2/2, 3/3 फोटो हैं, एकपत्र किसी ग्रन्थ का है, तो उसके साथ दूसरा किसी दूसरे ग्रन्थ का। ये सभी ग्रन्थ आकार में प्राय: 10 × 3 से० मी० हैं और प्रत्येक पृष्ठ में प्राय: 5 पंक्ति हैं, अक्षर संख्या भिन्न-भिन्न है। यद्यपि ग्रन्थों में कहीं-कहीं पत्र संख्या अंकित है, किन्तु फोटो की अव्यवस्था के कारण वह अस्तव्यस्त हो गई है। इस अव्यवस्थिति में से छांटने पर हमें निम्नांकित ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं, जिनमें हमने अपने संकेत के अनुसार पृष्ठ संख्या दी है, वही यहाँ दी जा रही है। उपलब्ध ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

1. मृत्युञ्जयस्तोत्र

पृष्ठ संख्या—1-6
लिपि—देवनागरी, पूर्ण।

प्रारम्भ

श्रीगणेंशाय नमः

कैलासस्योत्तरे शृङ्गे शुद्धस्फटिकसन्निभे।
तमोगुणविहीनेषु जन्ममृत्युविवर्जिते ॥ 1 ॥

अन्त

मृत्युञ्जयेन जप्तेन चिरकालं स जीवति।
सप्तजन्मकृतात्पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥ 46 ॥

पुष्पिका

इति परमेश्वरतन्त्रे चतुरशीतिसाहस्रके मृत्युञ्जयस्तोत्रं समाप्तम्।

2. प्रत्यङ्गिराकवच

पृष्ठसंख्या—1-15
लिपि—देवनागरी, पूर्ण।

प्रारम्भ

अथ प्रत्यङ्गिराकवचम्। नारदोवाच—
मृत्युञ्जयप्रभो त्वत्तः श्रुताऽमृतकलास्तुतिः।
अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं नीललोहितम् ॥ 1 ॥

त्वत्तः प्रत्यङ्गिरादेव्या येन मुक्तः स्वयं भवान्।
सर्वेश्वरत्वं संप्राप्य मज्जति ज्ञानयोगयोः ॥ 2 ॥

अन्त

पठेद्वा धारयेद्वापि कुर्यादुभयमेव वा।
नवाक्षरो महामन्त्रः कवचं विश्वमोहनम् ॥ 60 ॥

देवतासिद्धिः श्रीश्चैव मुक्तिमिश्रणिका त्रयम्। 61 ॥

पुष्पिका

इति श्रीनीललोहितनीलकालानलतन्त्रे विश्वमोहनं नाम प्रत्यङ्गिराकवचं सम्पूर्णम्।

3. चण्डिकादण्डक

पृष्ठ संख्या—1-5
लिपि—नेवारी, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमश्चण्डिकायै।

ॐ ॐ ॐ उग्रचण्डी चचकितचकितं चञ्चलादुर्गनेत्रं
हुँ हुँ हुँकाररूपं प्रहसितवदनं खड्गपाशान् धरन्तम्।
दं दं दं दण्डपाणिं डमरुडिमिडिमिं डंडमानं भ्रमन्तं
भ्रं भ्रं भ्रं भ्रान्तनेत्रं जयतु विजयते सिद्धिचण्डी नमस्ते ॥1॥

अन्त

मारुणवर्णसङ्काशा खड्गफेटकबिन्दुका ।
कामरूपी महादेवी उग्रचण्डी नमोऽस्तुते ॥ 9 ॥

पुष्पिका

इति श्रीचण्डिकादण्डकस्तोत्रं समाप्तम् ।

4. हेवज्रस्य मन्त्रहृदयनामधारणी

पृष्ठ सं०–1
लिपि—नेवारी, पूर्ण ।

प्रारम्भ-अन्त

ॐ नमः श्री हेवज्राय, अष्टाननाय हुं हुं हुं फट्, ॐ पिंगोर्ध्वकरचरणे हुं हुं हुं फट् । ॐ चतुर्विंशतिनेत्राय हुं हुं हुं फट्, षोडशभुजाय हुं हुं हुं फट्, ॐ कृष्णजीमूतवपुषे हुं हुं हुं फट् । ॐ कपालमाल्यकधारिणे हुं हुं हुं फट् । ॐ अध्यान्तकूरचित्ताय हुं हुं हुं फट् । शुद्धेन्दुदृष्टि यमालयं कीलय कीलय गर्जय गर्जय तर्जय तर्जय शोषय शोषय सप्तसागरान् बन्ध बन्ध नागाष्टकान् गृह्ण गृह्ण शत्रून् ह हा हि ही हे है हो हौ हं हः हुं हुं हुं फट् फट् फट् स्वाहा ।

पुष्पिका

इति हेवज्रस्य मन्त्रहृदयनामधारणी समाप्ता ।

5. नवग्रहस्तोत्र

पृष्ठ संख्या—1-3
लिपि—देवनागरी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीनवग्रहेभ्यः ।

जवाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥1॥

अन्त

अभिलाषार्थसिद्ध्यर्थं नवग्रहप्रसादितम् ।
सुप्रीतास्ते सदा तात पीडां देहे व्यपोहति ॥12॥

पुष्पिका

इति महर्षिव्यासकृतं नवग्रहस्तोत्रं समाप्तम् ॥

6. गणेश्वरमालामन्त्र

पृष्ठ संख्या—1-2
लिपि—देवनागरी, पूर्ण ।

प्रारम्भ-अन्त

ॐ ह्रीं नमो गणेश्वराय महाविघ्ननिवारणाय स्फोटय 2 अकालमृत्युं हन 2 वज्रहस्तेन छिन्धि 2 परशुहस्तेन भिन्धि 2 अहो गणाधिपते आगच्छ 2 रुद्रान्त-मलाय स्वाहा । ॐ गां गीं गूं गें गौं गः ॐ ॐ ह्रीं क्रों ॐ नमः सर्वविघ्नाधिपतये सर्वार्थसिद्धिदाय सर्वदुःखप्रशमनाय एह्येहि भगवन् खादय 2 ह्रीं गं गां नमः स्वाहा, ह्रीं ह्रीं, ॐ सिद्धिविनायक सिद्धि सिद्धि शक्तिः । गं गां गुं गणपतये स्वाहा ।

पुष्पिका

इति गणेश्वरस्य मालामन्त्रः समाप्तः ।

7. वज्रमहाकालस्य मालामन्त्रः

पृष्ठ संख्या—1
लिपि— देवनागरी, पूर्ण— ।

प्रारम्भ-अन्त

ॐ नमः श्रीवज्रमहाकालाय । शासनोपकारिणे यदि प्रज्ञासमरसि कालि कलालि वेतालि चण्डालि सिद्धियोगिनी अक्षोभ्यशिरसिधारिणी सर्वसत्त्वानां प्रच्छोपय 2 गृह्ण 2 सर्वशत्रून् मारय 2 हारय 2 बन्ध 2 छिन्द 2 भेद 2 ऋत 2 मम सर्वसत्त्वानां च रक्ष 2 हुं 2 फट् ॐ हुं वज्रमहाकालाय हुं फट् स्वाहा ।

पुष्पिका

इति वज्रमहाकालस्य मालामन्त्रः । शुभम् ।

8. आकाशविद्याधरीहृदयनामधारणी

पृष्ठ संख्या—1-4
लिपि—नेवारी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्री आकाशविद्याधरीदेव्यै ।

ॐ वज्रयोगिनीरूपसर्वस्वप्नदेहभागसत्सुखत्वेनोऽभिन्नाऽभूत् । तस्योपरि नपुंसक-विजयगानहृद्बीजपरिणतानेकान्त-ऊर्ध्वपादादिदृष्टिकपालवेष्टितकल्पपुष्पमालापाश-सर्वस्य दक्षिणे वज्रहस्ता —

अन्त

—हूं क्रीं भगवती सर्वबुद्धडाकिनी विधाधरी महामाया योगिनी शान्ति कुरु 2 हुं फट् स्वाहा ।

पुष्पिका

इति आकाशविद्याधरीहृदयनाम धारणी समाप्ता ॥

9. मङ्गलाष्टम्

पृष्ठसंख्या—1-4
लिपि—देवनागरी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीमंजुनाथाय ।

मञ्जुश्रीः लोकनाथः जिण(न)वरमकुटो जम्भरो(लो) वज्रसत्त्वः
मैत्रीयो वज्रपाणिः सुखवरसकलो राहुलो भद्रपालः ।
बुद्धो वैरोचनाख्यस्त्रिभुवननमितः क्षीणनिःशेषदोष-
स्तुष्टाः सर्वार्थसिद्धिं विभवसुखमथो मङ्गलं वो दिशन्तु ॥ 1 ॥

अन्त

छत्रं दूर्वा च पद्मं ध्वजमणिनिहितं लोचना मत्स्यकूर्मौ
वाराही पूर्णकुम्भो मुनिवरवचनं वज्रघण्टानिनादः।
बुद्धानां प्रातिहार्यं सुरनरनमितं हास्यलास्यं विलासः
तुष्टाः सर्वार्थसिद्धिं विभवसुखमथो मङ्गलं बोधिसत्त्वाः ॥ 8 ॥

पुष्पिका

इति मङ्गलाष्टकं समाप्तम् ॥

10. अचलस्य मुखाख्यानम्

पृष्ठसंख्या—1-7
लिपि—नेवारी, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीचण्डरोषणाय।

ॐ स्वभावशुद्धाः सर्वधर्माः स्वभावशुद्धोऽहं शून्यताज्ञानवज्रस्वभावात्मकोऽहं
ॐ झटिति शून्यतानन्तरं विश्वाम्भोजोदरगतकर्णिकाकेशराकुले हुंकारबीजसंजातः।

अन्त

ध्वस्तः कन्दर्पदर्पो हरिरपि दलितो मर्दितः शूलपाणिः
भग्नो ब्रह्माण्डखण्डः क्षितिजलमरुतस्तोयधातुर्विनष्टः।
स्वर्भूपातालमेरुर्ग्रहगणसकलाः पालदिक्पालनागाः
त्रैलोक्याक्रान्तमूर्तिर्जयतु विजयते चण्डरोषाचलश्रीः ॥ शताक्षरं ॥

पुष्पिका

इति अचलस्य मुखाख्यानं समाप्तम् ॥

11. विपरीतप्रत्यङ्गिरामन्त्रः

पृष्ठसंख्या—1-6

लिपि—देवनागरी, पूर्ण।

प्रारम्भ

नमो विपरीतप्रत्यङ्गिरायै।

अस्य श्रीविपरीतप्रत्यङ्गिरामन्त्रस्य भैरव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः प्रत्यङ्गिरा देवता
अभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

अष्टोत्तरशतं नाम मन्त्रस्यास्य प्रकीर्तितम् ।
सर्वंहृष्टोपचारैश्च ध्यायेत् प्रत्यङ्गिरां शुभाम् ॥

अन्त

मम मन्त्रतन्त्रविषचूर्णसर्वप्रयोगादीनामात्महस्तेन यः करोति करिष्यति कारयिष्यति वा तान् सर्वानन्येषां निवर्तयित्वा पातय कारकमस्तके ।

पुष्पिका

इति श्रीमहाभैरवतन्त्रे विपरीतप्रत्यङ्गिरामन्त्रः समाप्तः ॥

12. आर्यताराहृदयम्

पृष्ठसंख्या—1-4
लिपि—नेवारी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्री आर्यतारायै ।

ॐ लोचने सुलोचने तारे तारोद्भवे सर्वसत्त्वानुकम्पिनि सर्वसत्त्वोद्धारिणि सहस्रभुजे सहस्रनेत्रे । ॐ नमो भगवत्यै अवलोकय 2 मां सर्वसत्त्वांश्च हुँ फट् स्वाहा ।

अन्त

प्रभा पातोदरी प्रोक्ता श्रीमच्छ्री…… ……रात्मजा ।
तारानाम गुणानन्ता सर्वाशापरिपूरणी ॥
ॐ तारे कृपात्मने मन्त्रात्मके शरणीये स्वाहा ।

पुष्पिका

इत्यार्यतारानामहृदयं समाप्तम् ।

13. ध्वजाग्रतारा नाम धारणी

पृष्ठसंख्या—1-6
लिपि—नेवारी, पूर्ण ।

प्रारम्भ

ॐनमः सर्वज्ञाय

ॐ नमो भगवते सर्वमारबलप्रमथनाय तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धाय, ॐ नमो-भगवत्यै आर्यश्रीध्वजाग्रकेयूर्यै। एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये भगवान् देवेषु त्रायस्त्रिशेषु विहरति स्म पाण्डुकन्दरशिलायाम्।

अन्त

इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते च रुद्रब्रह्मेन्द्राः सर्वावती परिषच्च भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति।

पुष्पिका

इत्यार्यध्वजाग्रतारानाम धारणी समाप्ता।

14. आर्यपर्णशबरीहृदय नाम धारणी

पृष्ठसंख्या—1–3

लिपि—नेवारी, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमो भगवत्यै पर्णशबर्यै। ॐ नमो रत्नत्रयाय नमः अमिताभाय तथा-गतायार्हते सम्यक्संबुद्धाय। नम आर्यावलोकितेश्वराय बोधिसत्त्वाय महासत्त्वाय महाकारुणिकाय।

अन्त

ॐ नमः शबराणां भगवती पिशाची पर्णशबरी पिशाची स्वाहा, ॐ पिशाची पर्णशबरी ह्रीं: हः हुं फट् पिशाची स्वाहा। आर्यपर्णशबरी पिशाची स्वाहा।

पुष्पिका

इत्यार्यपर्णशबरोहृदयनाम धारणी समाप्ता।

विशेष

इस ग्रन्थ की एक साथ 2 मातृकायें लिखी हैं।

15. ध्वजाग्रकेयूरीनामधारणी

पृष्ठसंख्या—1-8
लिपि—नेवारी, पूर्ण।

प्रारम्भ

ॐ नमः वज्रसत्त्वाय। गुरवे नमः। नमो धर्माय संघाय अर्हते।
ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मन्दरे ये च यक्षाः
पाताले ये भुजङ्गा फणिमणिकिरणा ध्वस्तमोहान्धकाराः।
कैलासे श्रीविलासे प्रमुदितहृदया ये च विद्याधरेन्द्रा-
स्ते मोक्षद्वारभूतं मुनिवरवचनं श्रोतुमायान्ति सर्वे॥

अन्त

चन्द्रार्कविमले स्वाहा। सर्वग्रहनक्षत्राणा''' येरेसे स्वाहा रक्ष २ मां सर्वसत्त्वांश्च सर्वभयेभ्यः स्वाहा।

पुष्पिका

इत्यार्यध्वजाग्रकेयूरीनाम धारणी समाप्ता।

16. आर्यसर्वतथागतोष्णीषसितातपत्रानामापराजिता प्रत्यङ्गिरा

पृष्ठसंख्या—1-33
लिपि—देवनागरी, पूर्ण।
इसका विवरण दुर्लभ ग्रन्थ परिचय, पृष्ठ ७३ में देखें।

17. आर्यवाराहीरहस्यमालामन्त्रः

पृष्ठसंख्या—1-2
लिपि—नेवारी, पूर्ण।

प्रारम्भ-अन्त

ॐ नमो भगवती वज्रवाराही प्रोत्तुङ्ग 2 हन 2 प्राणान् किंकिनी 2 लोलिनी 2 धून 2 वज्रहस्ते शोषय 2 वज्रकपालखट्वाङ्गधारिणी महापिशितमांसाशिनी मानुषान्त्रप्रावृत्ते सानिध्ये नरमालाग्रन्थितधारिणी सुम्भनिसुम्भे हन 2 प्राणान् सर्वपशूनां महामांसच्छेदिनि क्रोधमूर्ते दंष्ट्राकरालिनि महामुद्रे श्रीहेरुकस्याग्र-

महिषी सहस्रशिरसे सहस्रबाह्वे शतसहस्रानने ज्वलिततेजसे ज्वालामुखि पिङ्गललोचने वज्रशरीरे वज्रिणि मिलिनि चलिनि हे 2 हं 2 हुं 2 ख 2 घू 2 रू 2 घुरु 2 मुरु 2 अद्वैता महायोगिनी पठितसिद्धे उँ 2 भ्रं 2 ग्रं 2 ह 2 हं 2 भीमे हस 2 हीरे हा 2 हूँ 2 त्रैलोक्यविनाशिनी शतसहस्रकोटितथागत-परिवारे हूं 2 फट् 2 वीराद्ये हूं 2 हाँ 2 महापशुमोहिनी योगेश्वरी त्वं डाकिनी सर्वलोकानां वन्दिनि संघप्रत्ययकारिणी हूँ 2 फट् भूतत्रासनि महावीरेश्वरि परमसिद्ध योगेश्वरि हूँ 2 फट् 2 हूँ 2 फट् 2 स्वाहा ॥

पुष्पिका

इति श्रीजिनजनन्या वज्रविरा(ला)सिन्या आर्यवज्रवाराह्या रहस्यमालामन्त्रः समाप्तः

18. प्रत्यङ्गिरास्तोत्रम्

पृष्ठसंख्या—8 (1-5, 11-13)
लिपि—देवनागरी, अपूर्ण।

प्रारम्भ

श्रीगणेशाय नमः। ॐ अस्य श्रीप्रत्यङ्गिरास्तोत्रमन्त्रस्य महादेव ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीप्रत्यङ्गिरा देवता हुँ बीजं स्वाहा शक्तिर्ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः।

कुब्जिकोवाच—

मन्दरस्थं सुखासीनं भगवन्तं महेश्वरम्।
सम्यगुपास्य चरणौ पार्वती परिपृच्छति ॥

अन्त

ब्रह्मणाऽऽराधिता पूर्वं विष्णुना प्रभविष्णुना।
प्रत्यङ्गिरा देवदेवैरिन्द्राद्यैरपि चर्चिता ॥
अस्याः शक्तिप्रभावेण निर्जिताश्चासुराः सुरैः।
दैत्याश्च निर्जिताः सर्वे त्रिपुरं च मया हतम् ॥

पुष्पिका

इति कुब्जिकामते चण्डोग्रशूलपाणिवदननिर्गतमहातन्त्रे प्रत्यङ्गिरासिद्धिमन्त्रस्तपोद्धारः समाप्तः।

इनके अतिरिक्त इस संग्रह में निम्नलिखित ग्रन्थों के प्रकीर्ण पत्र हैं, जिनमें पुष्पिका उपलब्ध है किन्तु अव्यवस्थिति के कारण पूर्णापूर्ण का निर्णय नहीं हो पाता—

1. आर्यभद्रचरी प्रणिधानमहारत्नराजः — 12 पृष्ठ
2. हेरुकस्य सर्वरोगोपशमनी धारणी — 2 पृष्ठ
3. सुवर्णप्रभोक्तसरस्वतीशतनामस्तवराजः — 3 पृष्ठ
4. वीरहनुमन्ताहृदयनामधारणी — 2 पृष्ठ
5. कालचक्रस्य मालामन्त्रः — 3 पृष्ठ
6. शीतलाष्टकम् — 2 पृष्ठ
7. एकजटाधारणी — 1 पृष्ठ
8. पञ्चबुद्धधारणी — 2 पृष्ठ
9. अ० सा०—इस ग्रन्थ के लगभग 22 पृष्ठ हैं। पत्रों में केवल बायीं ओर हासिये में अ० सा० लिखा है और कहीं ग्रन्थ का नाम, पुष्पिका आदि कुछ नहीं है। ग्रन्थ उपयोगी प्रतीत होता है। इसमें महत्त्वपूर्ण मन्त्र दिये हैं तथा नेवारी भाषा में उनके विषय में कुछ संकेत हैं। लिपि भी नेवारी है। पत्रों की संगति न मिल पाने के कारण इसका विवरण नहीं दिया जा सकता।

लुप्त बौद्ध वचन संग्रह

—डॉ० बनारसीलाल—

['धीः' के पिछले अंकों की भाँति प्रस्तुत अंक में भी लुप्तप्राय बौद्ध वचनों का संग्रह किया जा रहा है। इस अंक में पंचक्रम तथा सुभाषितसंग्रह में उद्धृत सूत्रों एवं तन्त्रों के वचनों को संगृहीत किया गया है।]

अद्वयसमताविजयमहायोगतन्त्र

[1]जपित्वा मन्त्रमतुलं साधयेत् साधनात्मकः।
सिध्यते तस्य त्रैलोक्यं मासैकेन न संशयः॥

षड् लक्षाणि जपित्वा तु मन्त्रं ज्ञानसमुद्भवम्।
वज्रसत्त्वं नमस्कृत्य पूर्णमास्यां स सिध्यति॥

न तस्य व्रतमाख्यातं नाक्षसूत्रं न मन्त्रकम्।
धारणा होमकर्माणि वर्ज्यन्ते च परापरम्॥

यकारार्थेन यत्किञ्चित् कर्तव्यं सिद्धिमिच्छता।
रेफादितृतीयेनैव जगत्कार्यं प्रवर्तते॥

अग्निवायव्यमाहेन्द्रवारुणे प्रतिमण्डले।
अर्धयामिकवेलायां द्वौ द्वौ कर्मणि तिष्ठतः॥

पूजाप्रायो भवेत् पूज्यो जपप्रायो विशुद्ध्यति।
अग्निहोत्रपरो भूतिं मोक्षं ध्यानपरो लभेत्॥

ज्ञात्वा इत्थं ततो मन्त्री जगद् बालवदाचरेत्।
ततः सिध्यन्ति मन्त्राश्च निर्विकल्पैकधर्मतः॥

मन्त्रतत्त्वमिदं व्यक्तं वाग्वज्रस्य प्रसाधनम्।
ज्ञानत्रयप्रभेदेन चित्तमात्रे नियोजयेत्॥

---

1. पं० क्र० II.५९-६६

एकनयनिर्देशसूत्र

[1]धर्मा इमे शब्दरुतेन व्याकृता
धर्माश्च शब्दश्च हि नात्र लभ्यते।
न चैकतां चाप्यवतीर्य धर्मताम्
अनुत्तरां क्षान्तिपरां पृषिष्यथेति ॥

[2]कर्मावरणप्रतिप्रस्रब्धिसूत्र

[3]तद्यथाऽन्यतमो भिक्षुरब्रह्मचर्यपुरुषवधपाराजिकत्वमापन्नः। पश्चात् संविग्नमनाः संतप्यमानहृदय उन्मत्तक इव विहारेण विहारं ग्रामेण ग्रामं रथ्यादिगतोऽपि तत्पापं सर्वजन-समक्षं संप्रकाशयन् 'मुषितोऽस्मि मुषितोऽस्मि' इति हाहाकारं मुहुर्मुहुः कुर्वन् न तत् पापदेशना-बलेनोर्ध्वमनुवचंस्तत्कर्म तनूकरोति स्म। तस्यालब्धमेव संतप्तचेतसः सतोऽन्यतमेनानभिज्ञा-लाभिना बोधिसत्त्वेन तथा तथा गम्भीरो धर्मो देशितो येनासौ सर्वेण सर्वं तत्पापमुन्मूल्य सर्वधर्मनैरात्म्यप्रतिवेधाद् अनुत्पत्तिधर्मक्षान्तिलाभी भूत इति सर्वापत्तिविनोदनः सर्वकर्म-विशोधनश्चायं गम्भीरधर्माधिमोक्ष इत्येवं बोद्धव्यम्।

[4]किन्नरराजपरिपृच्छासूत्र

[5]अन्यतमः कुलपुत्रः किन्नरराजाधिपतिं पृच्छति। 'कुतः पुनः किन्नरराजाधिपते सर्वसत्त्वानां रुतघोषा निश्चरन्ति? आह—आकाशात् कुलपुत्र रुतघोषा निश्चरन्ति। न पुनः किन्नराधिपते आध्यात्मिककोष्ठा[त्] सर्वसत्त्वाना[म्] रुतघोषा निश्चरन्ति। आह—तत् किं मन्यसे कुलपुत्र कायाभ्यन्तरकोष्ठात् सर्वसत्त्वानां रुतघोषा निश्चरन्ति आहोस्विच्चित्तात्। आह—किन्नरराजाधिपते न कायान्न चित्तात्। तत् कस्माद् हेतोः? कायो हि जडो निश्चेष्टस्तृण-कुड्य-काष्ठ-प्रतिभासोपमः, चित्तं चाप्यनिदर्शनं मायोपमम् अप्रतिम[म्] अविज्ञप्तिकम्। आह—कायं चित्तं मुक्त्वा तु कुलपुत्र कुतोऽन्यतो रुतघोषा निश्चिरन्ति? आह—नाकाशविनिर्मुक्तः किन्नराधिपते कश्चिद् रुतनिश्चारः। [आह]—तदनेन ते कुलपुत्र

1. सु० सं०, पृ० ३५
2. इसका भोटानुवाद कन्ग्युर सूत्र वर्ग में है (तो० 219)।
3. सु० सं०, पृ० 97-98
4. चीनी भाषा में इस सूत्र का अनुवाद हुआ है। नान्जियो सूची, पृ० 51, सं० 162।
5. सु० सं०, पृ० 35-37

पर्यायेणैवं वेदितव्यम् । ये केचिद् रुतव्यापारा निश्चरन्ति सर्व(र्वे) ते आकाशान्निश्चरन्तीति । आकाशस्वभावानि हि रुतानि । समनन्तरविज्ञातानि च निरुध्यते (न्ते) । निरोधादाकाशस्वभावाः सम्यग् वर्तन्ते । तस्मात् सर्वधर्मा उदाहृता अनुदाहृता वा तामेवाकाशकोटिसमतां न विजहति । रुतमात्रा हि कुलपुत्र सर्वधर्मा अ[व्य]ञ्ज[ना]………स च संकेतव्यवहारः । यो हि रुतसंकेतव्यवहारः, स न क्वचिद् धर्मेऽभिनिविष्ट इति ।

[1]चतुर्देवीपरिपृच्छा (व्याख्यातन्त्र)

[2]तद् देवि सम्प्रवक्ष्यामि सारात्सारतरं परम् ।
रहस्यं सर्वबुद्धानां यत्तत् सर्वात्मनि स्थितम् ॥

पञ्चज्ञानमयं तत्त्वं सर्षपस्थूलमात्रकम् ।
तस्य मध्ये स्थितो देवो ह्यव्यक्तो व्यक्तरूपवान् ॥

[3]चन्द्रकीर्ति

(1)

[4]पृथग्जनत्वेऽपि निशम्य शून्यतां
प्रमोदमन्तर्लभते मुहुर्मुहुः ।
प्रसादजास्रावनिपातलोचन-
स्तनूरुहोत्फुल्लतनुश्च जायते ॥

यत् तस्य संबोधिधियोऽस्ति बीजं
तत्त्वोपदेशस्य च भाजनं सः ।
आख्येयमस्मै परमार्थसत्यं
तदन्वयास्तस्य गुणा भवन्ति ॥

---

1. यह गुह्यसमाज का व्याख्या तन्त्र है ।
2. पं० क्र० II.12–13
3. यह 1, 2, 3 में उद्धृत वचन मध्यमकावतार के छठे परिच्छेद के हैं । इन्हें प्रो० पूसें ने भोट भाषा के आधार पर निश्चित किया है । ये संस्कृत में प्राप्त नहीं हैं ।
4. सु० सं०, पृ० 14

(2)

[1]आचार्यनागार्जुनपादमार्गाद्
बहिर्गतानां न शिवाभ्युपायः।
भ्रष्टा हि ते संवृतिसत्यमार्गात्
तद्भ्रंशतश्चास्ति न मोक्षसिद्धिः॥

उपायभूतं व्यवहारसत्य-
मुपेयभूतं परमार्थसत्यम्।
तयोर्विभागं न परैति यो वै
मिथ्याविकल्पैः स कुमार्गयातः॥

(3)

[2]लोकोऽपि चैक्यमनयोरिति नाभ्युपैति
नष्टेऽपि पश्यति यतः फलमेष हेतौ।
तस्मान्न तत्त्वत इदं न तु लोकतश्च
युक्तं स्वतो भवति भाव इति प्रकल्प्यम्॥

[3]तथागतगुह्यकोशसूत्र

[4]यः काश्यपः पिता स्यात् प्रत्येकबुद्धश्च तं जीविताद् व्यपरोपयेद् इदमग्र्यं प्राणातिपातानाम्। इदमग्र्यमदत्तादानानां यदुत रत्नत्रयद्रव्यापहरणता। इदमग्र्यं काममिथ्याचाराणां यदुत माता च स्याद् अर्हन्ती च तां चाध्यापयेत्। इदमग्र्यं मृषावादानां यदुत तथागतस्याभ्याख्यानम्। इदमग्र्यं पैशुन्यानां यदुत संघभेदः। इदमग्र्यं पारुष्याणां यदुतार्याणाम् अवस्कन्दना। इदमग्र्यं संभिन्नप्रलापानां यदुत धर्मकामानां विक्षेपः। इदमग्र्यम् अभिध्यानां यत् सम्यग्गतानां सम्यक्प्रतिपन्नानां लाभापहरणचित्तता। इदमग्र्यं व्यापादानां यदुतानन्तर्योपक्रमणम्। इदमग्र्यं मिथ्यादृष्टीनां यदुतात्यन्तगहनदृष्टिता। इमे दशाकुशलाः कर्मपथाः सर्वे महावद्याः। स चेत् काश्यप एकः सत्त्वः कश्चिद् एभिरेवं सावद्यैर्दशभिरकुशलैः कर्मपथैः समन्वागतो भवेत्, स च तथागतस्य हेतुप्रत्ययसंयुक्तां धर्मदेशनामवतरेत्।

1. सु० सं०, पृ० 28
2. सु० सं०, पृ० 18–19
3. तथागतगुह्यसूत्र एवं तथागतगुह्यकोषसूत्र एक ही सूत्र ग्रन्थ हो सकते हैं।
4. सु० सं०, पृ० 99–102

नात्र कश्चिदात्मा वा सत्त्वो वा जीवो वा पुद्गलो वा यः करोति प्रतिसंवेदयतीति ह्यकृतता-मनभिसंस्कारतामसंक्लेशतां मायाधर्मतां प्रकृतिप्रभास्वरतां सर्वधर्माणामवतरत्यादिविशुद्धान् सर्वधर्मान् अभिश्रद्धात्यधिमुञ्चते। नाहं तस्य सत्त्वस्यापायगमनं वदामि। नास्ति क्लेशानां राशीभावः। उत्पन्नभग्नविलीना हि क्लेशाः। ते तत्प्रत्ययसामग्रीयोगत उत्पद्यन्ते, उत्पन्न-मात्राश्च निरुध्यन्ते। यश्चित्तोत्पादभङ्गः स एव भगवान् सर्वक्लेशानां भङ्गः। य एवमधिमुक्तो न तस्य कदाचिदापत्तिर्नापत्तिस्थानं वाऽस्थानमनवकाशो यदनावरणे आपत्तिस्तिष्ठेत्। नेदं स्थानं विद्यत इति। अचिन्त्यमानसानामप्यकर्तव्यता न विधीयते, ये पुनरज्ञाततत्त्वाः पुण्य-रहितास्ते हताः। आह—

एवमज्ञाततत्त्वा ये श्रुतमात्रावलम्बिनः।
नैव कुर्वन्ति पुण्यानि हतास्ते बुद्धशासने॥

नागार्जुनपाद

[1]तत् तत् प्राप्य यदुत्पन्नं नोत्पन्नं तत् स्वभावतः।
स्वभावेन यदुत्पन्नमनुत्पन्नं नाम तत् कथम्॥

[2]वज्रमाला (व्याख्यातन्त्र)

[3]नासाग्रे सर्षपं नाम प्राणायामस्य कल्पना।
प्राणायामस्थिताः पञ्चरश्मयो बुद्धभावतः॥

ऊर्ध्वं घ्राणाद् विनिष्क्रान्तो वामदक्षिणद्वन्द्वतः।
अ[ध]श्चेति चतुर्धास्माद् वेला आध्यात्मिका स्मृता॥

कण्ठहृन्नाभिगुह्याब्जे गत्यागतिं विनिर्दिशेत्।
विहरेदर्धयामिकां [वेलां] परिपाट्या यथाक्रमम्॥

दक्षिणाद्विनिर्गतो रश्मिर्हुतभुङ्मण्डलं च तत्।
रक्तवर्णमिदं व्यक्तं पद्मनाथोऽत्र देवता॥

---

1. सु० सं०, पृ० 28
2. यह गुह्यसमाजतन्त्र का व्याख्यातन्त्र माना जाता है।
3. पं० क्र०, II. 16–24

वामाद्विनिर्गतो रश्मिर्वायुमण्डलसंज्ञितः।
हरितश्यामसंकाशः कर्मनाथोऽत्र देवता ॥

द्वाभ्यां विनिर्गतो रश्मिः पीतवर्णो महाद्युतिः।
माहेन्द्रमण्डलं चैतद्रत्न[ना]थोऽत्र देवता ॥

अधो मन्दप्रचारस्तु सितकुन्देन्दुसंनिभः।
मण्डलं वारुणं चैतद् वज्रनाथोऽत्र देवता ॥

सर्वदेहानुगो वायुः सर्वचेष्टाप्रवर्तकः।
वैरोचनस्वभावोऽसौ मृतकायाद्विनिश्चरेत् ॥

वायुतत्त्वमिदं व्यक्तं पञ्चज्ञानस्वभावकम्।
तार्किका न प्रजानन्ति अगम्यं बालयोगिनाम् ॥

[1]सन्धि(सन्ध्या)व्याकरण (व्याख्यातन्त्र)

[2]प्रत्युवाच ततः श्रीमान् महावैरोचनं विभुम्।
विश्वरूपमिदं चित्तं सर्वसत्त्वोपपत्तितः ॥

जातं सन्निःस्वभावोऽपि भावाख्यं तु प्रतीत्यतः।
कृत्वा चानुभवं सम्यग्बोधिचित्तं खतुल्यकम् ॥

जगदर्थं विधातुं च तद्देशयोत्तमे जने।
साधनोपायिकमात्रं ज्ञात्वा तन्त्रे विपश्चितम् ॥

आचार्या वयमित्येवं वदन्त्यागमिका विभो।
यत्[तु] वाक्यं ममेत्येवमुक्त्वा क्षिपन्ति बालिशाः ॥

संध्याय बोधिचित्तं ते न विदन्ति यथार्थतः।

[3]समाजोत्तर

[4]विद्यानयविधानेन चतुःसंध्याप्रयोगतः।
जपेन्मन्त्रमभिन्नाङ्गं लक्षमक्षरसंख्यया ॥

---

1. यह भी गुह्यसमाजतन्त्र का व्याख्यातन्त्र है।
2. पं० क्र०, II. 27–31
3. यह तथागतगुह्यक तथा गुह्यसमाज से भिन्न प्रतीत होता है, क्योंकि यह श्लोक वहां नहीं मिलता।
4. पं० क्र०, II. 47–58

बाह्यजापं त्यजेद् योगी भावनायान्तरायिकम्।
मन्त्रार्थो भगवान् वज्री वज्रात्मात्र कथं जपेत्॥
हस्तिनं लभते सद्यो मृगयेद्धस्तिनः पदम्।
मन्त्रमूर्तिः स्वयं साक्षात् किमन्यत्तु गवेषते॥
अपि च वज्रधृक् कश्चित् त्रिसंयोगान्वितो नरः।
आवाहनं विसर्जनं स्यात् तथा स्थापनमेव च॥
आवाहनं प्रवेशेन त्वरितेन विसर्जनम्।
बाष्पेण स्थापनं तत् स्याद् विश्वस्तत् सिद्धिरुत्तमा॥
त्वरिते निबन्धके बाष्पे मन्त्रनियोजना कथिता।
कर्णमूले तु शिष्यायाचार्येण सुप्रयत्नतः॥
अथ योगेश्वराणां तु दिव्योपायः प्रदर्शितः।
गुह्याक्षरं प्रवक्ष्यामि योगसिद्धिफलप्रदम्॥
येन चिन्तितमात्रेण योगिनः स्युर्वरप्रदाः।
आद्यक्षरप्रयोगेण उच्छ्वासं कुरुते सदा॥
अष्टान्तेन समायुक्तम् उकारेण सबिन्दुकम्।
निश्वासं कुरुते योगी रुचिजप्तमिहोच्यते॥
अयुतद्वयं सहस्रं च षट् शतानि तथैव च।
अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसंख्यां करोति च॥
तदेवं गुह्यसन्ध्यायां सूक्ष्मयोगः प्रकाशितः।
ध्यानाध्ययनवीतं तु तथापि जाप उच्यते॥
अनेन वज्रजापेन सेवां कृत्वा यथाविधि।
साधयेत् सर्वकार्याणि मायोपमसमाधिना॥

[1]सर्वधर्मप्रवृत्तिनिर्देशसूत्र

[2]शब्दरुतप्रविष्टो देवपुत्रबोधिसत्त्वो महासत्त्वः गङ्गानदीवालुकासमान् कल्पान् रुष्येत् परिभाष्येत् वितथैव असद्भूतपादैर्न तत्र प्रतिघचित्तमुत्पद्यते। स चेद् गङ्गानदीवालुकासमान्

1. भोटानुवाद कन्ग्युर सूत्र वर्ग में प्राप्त है (तो० 180)।
2. सु० सं०, पृ० 38

कल्पान् सत्क्रियेद् गुरूक्रियेद् मान्येत् पूज्येत् सर्वसुखोपधानैश्चीवरपिण्डपात-शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्यपरिष्कारैर्न तत्र तस्यानुनयचित्तमुत्पद्यते ।

[1]संवर[तन्त्र]

[2]सर्वतः पाणिपादाद्यं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

एष स्वभाविकः कायः शून्यताकरुणाद्वयः ।
नपुंसक इति ख्यातो युगनद्ध इति क्वचित् ।
निरावरणधर्मेण स्कन्धादीनामिह स्थितेः ॥
सर्वमण्डलमेवेदम् आधाराधेयलक्षणम् ।

[3]हस्तिकक्ष(क्ष्य)सूत्र

[4]न चात्र तथता न तथागतोऽस्ति
रूपं हि संदृश्यति सर्वलोके ।

1. संवर नाम से उद्धृत ये वचन संवरतन्त्र के हो सकते हैं ।

2. सु० सं०, पृ० 95

3. भोटानुवाद कन्ग्युर सूत्र वर्ग में उपलब्ध है (तो० 207) ।

4. सु० सं०, पृ० 96

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय

—ठिनलेराम शाशनी—

['धीः' के पिछले अंकों में इस स्तम्भ के अन्तर्गत अनेक बौद्ध-तन्त्र ग्रन्थों से विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ संकलित की गई हैं। पिछले दशम अंक में आचार्य रविश्री कृत 'अमृतकणिकानाम श्रीनामसंगीतिटिप्पणी' तथा 'डाकिनीजालसंवररहस्यम्' से संकलित पारिभाषिक व्याख्याओं का अकारादि क्रम से 'प' तक का अंश दिया जा चुका है। प्रस्तुत अंक में अवशिष्ट अंश दिया जा रहा है।]

बिन्दुशून्यः षडक्षरो धर्मोदयः

विज्ञानस्कन्धाकाशधातुश्रोत्रधर्मधातुभगशुक्रच्युतीनां निरावरणशून्यता पूर्वोक्ता मध्यमाऽनाहतचिह्नस्योर्ध्वे कवर्गात्मकं ककारव्यञ्जनमनुच्चार्यं प्रथमं बिन्दुशून्यम्। संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणेन्द्रियस्पर्शवाग्विट्स्रावाणां निरावरणसर्वाकारशून्यता पूर्वोक्तचिह्नस्य पूर्वे चवर्गात्मकं चकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं [द्वितीयं] बिन्दुशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातुचक्षुरसपाणीन्द्रियगतीनां सर्वाकारनिरावरणशून्यता दक्षिणचिह्नस्य दक्षिणे टवर्गात्मकं टकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं तृतीयं बिन्दुशून्यम्। संज्ञानस्कन्धतोयधातुजिह्वारूपपादेन्द्रियादानानां निरावरणशून्यता उत्तरचिह्नस्योत्तरे पवर्गात्मकं पकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं चतुर्थं बिन्दुशून्यम्। रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाय्वालापानां निरावरणशून्यता पश्चिमचिह्नस्य पश्चिमे तवर्गात्मकं तकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं पञ्चमं बिन्दुशून्यम्। ज्ञानस्कन्धधातुमन शब्ददिव्येन्द्रियमूत्रस्रावाणां सर्वाकारनिरावरणशून्यता मध्याऽनाहतचिह्नस्याधस्तात् शवर्गात्मकं शकारव्यञ्जनमनुच्चार्यं षष्ठं बिन्दुशून्यमिति। एवं बिन्दुशून्यः षडक्षरो धर्मोदयः। (अ० क०, पृ० 315-316)

बीजम्

अनाभोगेन सर्वसुखजननाद् बीजं धर्मधातुज्ञानम्। (अ० क०, पृ० 286)

बुद्धकामः

बुद्धैर्वा काम्यत इति बुद्धकामः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धकायः

विरमानन्दत्वेन धर्मकायत्वाद् बुद्धकायः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धनाटकः

सहजस्फरत्स्थिरचलरूपत्वेन बुद्धनाटकः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धपुत्रः

उक्तप्रभास्वरचित्तप्रबोधाद् बुद्धः, तस्य पुत्र आत्मजः सहजः परिदृष्टत्वेनात्यन्तप्रभाश्रयत्वात्। निर्विकल्पप्रतिवेधनिर्यात इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 248)

बुद्धप्रीतिः

शून्यतागर्भसहजानन्दक्षणत्वेन बुद्धप्रीतिः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धभावः

धर्मकायभिन्नसम्भोगत्वेन बुद्धभावः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धबोधिः

कायवाक्चित्तस्वरूपावबोधरूपत्वादद्वयश्रीरेव बुद्धबोधिः। (अ० क०, पृ० 313)

बुद्धमोदः

द्वयप्रहाणेनाद्वयसुखप्रमोदलाभाद् बुद्धमोदः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धरागः

महारागरूपत्वाद् बुद्धरागः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धवाचः

कर्माङ्गनाद्वाराप्यवधूतीपदप्रापितप्राणादिवायुत्वेनानाहतनादोल्लासरूपत्वाद् बुद्धवाचः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धस्मितः

सुखमयज्ञानप्रकाशयोगाद् बुद्धस्मितः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धहासः

सहजचण्डालीज्योतिषा सकलज्ञेयमण्डलव्यापनाद् बुद्धहासः। (अ० क०, पृ० 330)

बुद्धः

सहजज्ञानं बुद्धिस्तद् योगाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० 207)
महासुखप्रबोधाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० 220)
सर्वपदार्थानां समतयाऽवगमाद् बुद्धः। (अ० क०, पृ० 287)

बोधिसत्त्वः

सर्वधर्मानासक्तमहायानार्थावबोधाद् बोधिसत्त्वः। (अ० क०, पृ० 321)

बोधिः

तथा चोक्तमार्यवसुबन्धुपादैः—आवरणपरिच्छेदो हि बोधिः। (डा० जा० सं० र०, पृ० 8)

ब्रह्म

प्रकृतिप्रभास्वरशून्यताकरुणाभिन्नज्ञानं ब्रह्म। (अ० क०, पृ, 283)

ब्रह्मचारी

अच्युतबोधिचित्तत्वादेव ब्रह्मचारी। (अ० क०, पृ० 282)

ब्रह्मा

आकाशासक्तचित्ततया प्रत्याहारादिषडङ्गसंक्षेपचतुरङ्गब्रह्मविहारचतुर्ध्यानचतुर्मुख-स्वभावत्वाद् ब्रह्मा। (अ० क०, पृ० 283)

[1]"ब्रह्मा निर्वति(वृत्ति)तो बुद्धः" धात्वाश्रावत्वात् स्वशरीरे क्षयाद् बाह्ये निर्गमाभावाद् ब्रह्मा वैरोचनो बुद्धो भण्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

ब्राह्मणः

पञ्चाक्षररूपत्वाद् हुंकारः पञ्चतथागतात्मको ब्राह्मणस्तन्नादमागम्य यावदुष्णीषलयेन सर्वविकल्पवातं वाहयतीति ब्राह्मणः। (अ० क०, पृ० 283)

भगवान्

भगोऽत्र ललाटचक्रमध्याद् गुह्यवरटकगतो ज्ञानबिन्दुस्तदुदितप्रभास्वरज्ञानं भगवन्तम्।
(अ० क०, पृ० 187)

भगः सर्वाकारनिराकारशून्यता, तद्योगाद् भगवान्। (अ० क०, पृ० 188)

भगो महामुद्रा महाप्रज्ञा, तद्योगाद् भगवान्। श्रीहेवज्रे—

[2]भञ्जनं भगमाख्यातं क्लेशमारादिभञ्जनात्।
प्रज्ञाबध्याश्च ते क्लेशास्तस्मात्प्रज्ञा भगोच्यते॥ (अ० क०, पृ० 193)

भयनाशनः

सर्वाकारवरोपेतशून्यता(तया) सर्वप्रपञ्चभयविदारणान्निःशेषभयनाशनः।
(अ० क०, पृ० 281)

---

1. हे० तं०, 1.5.13
2. यह श्लोक वहाँ उपलब्ध नहीं होता। 'भगोऽस्यास्तीति' (1.5.15) इत्यादि वचन वहाँ मिलता है।

भवपञ्जरः

भवः कायवाक्चित्तस्वरूपापरिज्ञानम्, स एव पञ्जरः, निर्गमहेतुत्वात्।
(अ० क०, पृ० 267)

भवः

भवो रागादिक्लेशः। (अ० क०, पृ० 218)

भास्करद्युतिः

भाभिर्भास्करद्युतिःपुञ्जरूपा यमान्तकादिक्रोधतत्स्फरणरूपा द्युतिस्तत्क्रोधविनयसत्त्वार्थं यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० 289)

भिक्षुः

पञ्चकामोपभोगेनापि भिन्नक्लेशत्वाद् भिक्षुः। (अ० क०, पृ० 240)

भूतकोटिः

भूतं यथाभूतज्ञानम्, तदनुभवस्थानस्य मणिवरटकस्य कोटिः शिखरम्।
(अ० क०, पृ० 236)

भूतवादी

भूतमविपरीतसुखं वदितुं साक्षात्कर्तुं तद्रूपेण प्रकाशयितुं शीलमस्य स तथा।
(अ० क०, पृ० 235)

भूतान्तमुनिः

भूतं सत्यं तथता, तस्यान्तः प्रकर्षः फलावस्था, तस्य यथावन्मननाद् भूतान्तमुनिः।
(अ० क०, पृ० 297)

भूतिः

अविच्छिन्नसुखत्वाद् भूतिः। (अ० क०, पृ० 281)

मञ्जुघोषः

सर्वचक्रेष्वागतबिन्दुप्राणसंमिश्रज्ञानविज्ञानैकलोलीभूतनादत्वाद् मञ्जुघोषो मञ्जुश्रीः।
(अ० क०, पृ० 259)

मञ्जुश्रीः

सर्वधर्माद्वयात्मकत्वान्मञ्जुश्रीरद्वयश्रीः। (अ० क०, पृ० 326)

मण्यन्तर्गतम्

वज्रस्य मणौ मध्ये चतुर्बिन्द्वात्मकं चित्तवज्रं यदा भवति, तदा वज्रपर्यङ्कतश्चित्तं मण्यन्तर्गतमित्युच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० 3)

मदः

उत्कर्षचेतसः पर्य्यादानं मदः। (अ० क० पृ० 333)

मध्यमानन्दः

मध्यमानन्दमात्रं मध्यमम्, सुखसामान्यरूपत्वात्। .... मध्यमा मध्यमसुखमात्रं प्रथमानन्दः। (अ० क०, पृ० 274)

मनोजवः

महासुखोल्लासेन त्रैधातुकाक्रमणवेगो मनोजव, तद्योगान्मनोजवः। (अ० क०, पृ० 237)

मन्त्रविद्याधरः

मन्त्रविद्याधरकुलं निःस्पन्दानन्दशुक्ररूपधारणादक्षोभ्यो वज्रविज्ञानस्वभावः, मणिवरट-कान्तर्वर्ती वज्रकमलकर्णिकागूढगोचर इत्यर्थः। मन्त्रदीपनं सहजालोककारकम्। 'मत्रि गुप्तभाषणे' इत्यपि पाठः। अत एव सकलमण्डलचक्रवर्तिरूपां विद्यां स्फरणेन धारयतीति मन्त्रविद्याधरः। (अ० क०, पृ० 197)

मन्त्रः

मंन[स]स्त्राणभूतत्वान्मन्त्रं सुखमुदाहृतमिति। (अ० क०, पृ० 197)
शान्तिकादिपौष्टिकादिप्रत्याहारलक्षणो लौकिको मन्त्रः। परमाक्षरयोगेन बिन्दुनादात्मको लोकोत्तरो मन्त्रः। (अ० क०, पृ० 314)

महाकरुणा

महाकरुणा महासुखरूपि[णी] बोधिचित्ततया स्फरणलक्षणं जगदर्थं कुर्वतीति।
(अ० क०, पृ० 186)

महाकामः

सहजकायाभिलाषप्रकर्षपर्यन्ततया ऊर्णाब्जे केषाञ्चिन्मते मणिमूले महाकामः, कायानन्द इत्यर्थः। (अ० क० पृ० 210)

महाकारुणिकः

नित्यानवरतस्वायत्तमहासुखत्वेन जगद्दुःखवियोगसम्पादनान्महाकारुणिकः।
(अ० क०, पृ० 216)

महाक्रोधः

महाक्रोधः सर्वविकल्पक्लेशशातनात्। क्रोधातिक्रान्तत्वान्महाक्रोधो विरमानन्दनिरोधः सहजानन्दः। (अ० क०, पृ० 209)

महाक्लेशाः

महाक्लेशाः प्राकृतरागादयः। (अ० क०, पृ० 211)

महाक्षान्तिः

बाह्यशब्दाद्यनभिनिवेशो महाक्षान्तिः। (अ० क०, पृ० 215)

महाज्योतिः

सर्वधर्माणां निरोधोत्पन्ननिर्मलप्रकृतिज्योतीरूपत्वान्महाज्योतिः। (अ० क०, पृ० 211)

महातन्त्रम्

तन्यते व्युत्पाद्यत इति तन्त्रम्, महच्च तत्तन्त्रं चेति महातन्त्रम्, महासुखज्ञानमित्यर्थः। उक्तं च—

तन्त्रं प्रबन्धमाख्यातं संसारं तन्त्रमिष्यते।
तन्त्रं गुह्यं रहस्याख्यमुत्तरं तन्त्रमुच्यते॥ (अ० क०, पृ० 191)

महातपः

नित्यकमलकुलिशसंयोगाभ्यासेन बिन्दुमध्ये षट्श्वासलयकरणेन तस्य बिन्दोः कुलिशमुखे भक्षणलक्षणं महातपः। (अ० क०, पृ० 283)

महादानम्

महादानं सकलबाह्याध्यात्मिकवस्तुपरित्यागः, विकल्पप्रपञ्चमनोवर्जनं च।
(अ० क०, पृ० 214)

महाद्युतिः

ग्राह्यग्राहकप्रपञ्चरहितसुखानुभवद्योतनान्महाद्युतिः। (अ० क०, पृ० 211)

महाध्यानम्

सहजसुखगतं चित्तं महाध्यानम्। (अ० क०, पृ० 215)

महापाशः

पाशशब्देन नाभ्यधः कुण्डलाकारेण स्थितो नागाकृतिर्वासुकिनामा नाडीविशेषः। तेनावधूतीमार्गेण ब्रह्मस्थानं गत्वा स बोधिचित्ताकर्षणेन स्कन्धधात्वायतनानां व्यापनान्महापाशः। (अ० क०, पृ० 253)

महाप्रज्ञा

महाप्रज्ञा अनाहतसर्वत्रगा सर्वभावा। (अ० क०, पृ० 215)

महाप्रज्ञायुधम्

महाप्रज्ञा शून्यता धर्मधातुलक्षणा, तस्या आयुधं कायविरमानन्दं मणिशिखरान्ते नाभ्यब्जे वा। (अ० क०, पृ० 211)

महाप्राज्ञः

प्रज्ञा महामुद्रा, स(सा) तादात्म्येन विद्यते [यस्य] स प्राज्ञः, महांश्चासौ प्राज्ञश्चेति महाप्राज्ञः, युगनद्धहृदिस्थ इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 217)

महाप्राणः

प्रभास्वरस्फरणेन प्रकृतिधर्मेण वामदक्षिणनासारन्ध्रयोर्दशमण्डलसञ्चाराभावेन अवधूतीगतप्राणत्वात् महाप्राणः, वज्रधरप्रतिबिम्बकायो मायोपमदेह इत्यर्थः।
(अ० क०, पृ० 208)

महाबलम्

शून्यताकरुणाभिन्नं भवनिधनज्ञानबलमद्वयं महद् यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० 215)

महाबिन्दुः

अ क च ट त प य श क्ष ओं [ह]काराकारेण सह दशवर्गदशप्राणादिवायूनां मध्यमाप्रवाहत्वेन एकलोलीभूय सर्वशरीरेषु लीनत्वान्महाबिन्दुर्भगवान्। (अ० क०, पृ० 314)

महामन्त्रम्

मनसस्त्राणभूतत्वान्मन्त्रं सुखमुदाहृतमिति महामन्त्रं महासुखज्ञानमेव।
(अ० क०, पृ० 220)

महामन्त्रः

रेचकपूरककुम्भकाक्षरत्वेन स्वसंवेद्यत्वान्महामन्त्रः। (अ० क०, पृ० 313)

महामहः

महेति प्रज्ञा महामुद्रा सा महती यस्य स तथा। महान् रागोऽनालम्बकरुणात्मको यस्य स तथा। ... अथवा महान् लोकातिक्रान्तो मह उत्सवः सहजोल्लासो यस्य स तथा।
(अ० क०, पृ० 209)

महामाया

रागविरागाभावेन महारागरूपा महामाया दिव्यमुद्रा। (अ० क०, पृ० 212)

महामुद्राकुलम्

महामुद्राकुलममोघसिद्धिर्ललाटचक्रे स्थितः स्वसंवेद्यस्वभावो वज्रसंस्कारस्वभावः।
(अ० क०, पृ० 198)

महामुनिः

महासुखस्वरूपस्य यथावन्मननान्महामुनिः। (अ० क०, पृ० 220)

महामैत्री

सकलज्ञेयमण्डलमहासुखाकारतया लोकोत्तरसुखसंयुक्तजगत्स्फरणान्महामैत्री।
(अ० क०, पृ० 216)

महामोहा

मोहातिक्रान्तत्वात् महामोहा। (अ० क०, पृ० 209)

महामौनी

अवाच्यसुखात्मकत्वेन कायवाक्चित्तमौनयोगान्महामौनी। (अ० क०, पृ० 220)

महायानम्

महायानं महासुखज्ञानं नीयते प्राप्यतेऽनेनेति महायानम्। (अ० क०, पृ० 219)

महारतिः

महती रतिरस्यासौ महारतिः। तथैव तत्रैव सहजज्ञानाभिलाषतया ज्ञानानन्द इत्यर्थः।
(अ० क०, पृ० 210)

महारागः

महारागः परमाक्षरसुखपूर्णत्वाद् भूमिपूरितत्वाच्च वज्रानङ्गो वज्रसत्त्व इत्यर्थः।
(अ० क०, पृ० 209)

महारिपुः

सर्वक्लेशानां षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासप्रश्वासानां महारिपुर्हन्ता महासुखवेदकत्वेनाचल इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 209)

महारौद्रः

परमाक्षरमहारसविद्धसर्वश्वासत्वाद् विषयेन्द्रियादीनां संसारदुःखदायकत्वरूपसंहारेण महासुखैकलयान्महारौद्रः। (अ० क०, पृ० 218)

महालोभः

च्यवनलोभातिक्रमान्महामहमहालोभः परमाक्षरसुखोपायेन सत्त्वार्थपरित्यागात्।
(अ० क०, पृ० 209)

महावज्रधरः

आलोक-आलोकाभास-आलोकोपलब्धिलक्षणं निराभासलक्षणं महावज्रं धरतीति स तथा। (अ० क०, पृ० 218)

महाविपुलमण्डलः

विस्तीर्णं मण्डं सुखसारं लातीति महाविपुलमण्डलः। (अ० क०, पृ० 211)

महावीर्यम्

वामदक्षिणनासापुटदशमण्डलभङ्गेन श्वासवातस्यावधूतीप्रवेशो महावीर्यम्।
(अ० क०, पृ० 215)

महावैरोचनः

महावैरोचनशब्देन प्रकृतिप्रभास्वरं ज्ञानम्, तन्महच्चास्य स तथोक्तः, ज्ञानमयकाय इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 220)

महाशीलम्

बाह्याङ्गनासम्पर्के बोधिचित्त[ा]च्यवनं शीलम्। (अ० क०, पृ० 215)

महासत्त्वः

अपरिमितसुखेन सत्त्वतर्पणान्महासत्त्वः। (अ० क०, पृ० 321)

महासुखम्

अविपरीतधूमादिनिमित्तद्वारेण महासुखमिति। (अ० क, पृ० 236)

महास्मृतिः

अनवरतसर्वाकारवरोपेतशून्यतानिमज्जनं महास्मृतिः। (अ० क०, पृ० 303)

महोपायः

महोपायः करुणा शुक्रगुणेन जगदर्थयोगान्महोपायः। (अ० क०, पृ० 215)

महोष्णीषकुलम्

महोष्णीषकुलं ...... उष्णीषचक्रे व्यवस्थितो वज्रसत्त्वः, स तु ज्ञानात्मकत्वात् सहज-प्रकृतिस्वभावः। (अ० क०, पृ० 198)

मानः

चित्तसमुन्नतिर्मानः। (अ० क०, पृ० 333)

मायाजालः

महामायासमुद्भूतपरमसुखत्वेन मायाजालः। (अ० क०, पृ० 330)

मारारिः

प्रभास्वररत्नाक्रान्तकायवाक्चित्तरागत्वेन मारारिः। (अ० क०, पृ० 319)

मुक्तिः

शून्यताऽविनिर्भागवर्तित्वाद् मुक्तिः। (अ० क०, पृ० 283)

रागादिबन्धनापगमहेतुत्वाद् मुक्तिः। (अ० क०, पृ० 332)

मुदिता

मुदिता हृष्टचित्ततया पद्मे वज्रस्फारणात्। (डा० जा० सं० र०, पृ० 1)

मूढधीः

मूढा निर्विकल्पा धीः सहजज्ञानं यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० 209)

मैत्री

प्रेमातिशयेन कुम्भस्य स्पर्शनाद् मैत्री। (डा० ज० सं० र०, पृ० 1)
सहजानन्दसुखं (चित्तं) मैत्री। (अ० क०, पृ० 319)

मोक्षः

सम्यगनुभवत्वेन यावदाकाशमविनश्वरसुखगामित्वान्मोक्षश्चतुर्थार्थः।
(अ० क०, पृ० 283)
सम्यग्ज्ञानस्वभावत्वाद् मोक्षः। (अ० क०, पृ० 332)

मोहसूदनः

मोहः शुक्रच्युतिस्तस्य सूदनाद् भक्षणान्मोहसूदनः। (अ० क०, पृ० 209)

मौण्डी

सकलविकल्पक्लेशमण्डनाद् मौण्डी। (अ० क०, पृ० 282)

यमान्तकः

यमं द्वयं स्वपराभिनिवेशस्तस्यान्तको युगनद्धवाहीत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 255)

योगः

योग इति चण्डालीशुक्लयोरैक्यम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० 4)
ज्ञानामात्रालयत्वाद् योगः। (अ० क०, पृ० 332)

योगी

कायवाक्चित्तैकीकरणाद् योगी। (अ० क०, पृ० 246)

योनिः

महासुखाकारसम्भोगकायो योनिः। (अ० क०, पृ० 248)

रत्नकेतुः

सर्वजनरञ्जनार्थेन सुखरत्नाङ्कितः केतुः रत्नकेतुः। (अ० क०, पृ० 312)

रत्नत्रयम्

रत्नानि धर्मसम्भोगनिर्माणाख्यानि सहजैकरूपाणि। (अ० क० पृ० 252)

रत्नसम्भवः

ज्ञानमेव महासुखचित्तमेव काय उपचयात्मकत्वाद् यस्य, स च रत्नसम्भवः कण्ठचक्रवर्ती। (अ० क०, पृ० 205)

लयनम्

रतिहेतुत्वाद् लयनम्। (अ० क०, पृ० 333)

लोकनाथः

भवरागतृष्णामलप्रहीणत्वाल्लोकनाथः। (अ० क०, पृ० 320)

लोकलोकोत्तरकुलम्

लोकशब्देन कायवाक्चित्तमुच्यते। तदुत्तरं धर्मं (हृदय) चक्रम्, तत्र तन्महासुखलक्षणोऽमिताभः सहजसंज्ञास्वभावः। (अ० क०, पृ० 198)

लोकालोककुलम्

लोको लोकादयः, तेषामालोकः प्रभास्वरम्, तस्य कुलं स्थान(नं) कण्ठचक्रे व्यवस्थितो रत्नस्वभावः, महासुखवेदकत्वाद् वज्रवेदनास्वभावः। (अ० क०, पृ० 198)

वज्रघोषः

कायोऽपि सर्वाकाशव्यापी महासुखनादत्वाद् वज्रघोषः। (अ० क०, पृ 259)

वज्रधरः

शून्यताकरुणाभिन्नं महासुखज्ञानवज्रं तादात्म्येन धरतीति वज्रधरः। वज्रमभेद्य(द)ज्ञानमसत्संकल्पास्थित(तं) स्कन्धक्लेशमृत्युविघ्नमारैरभेद्यत्वात्। ... तत्सूचकं पञ्चशू(सू)चिकवज्रं बहिः, तदीयस्तत्त्व(तदन्तस्तत्त्व)सूचनार्थं धरतीति वा वज्रधरः। (अ० क०, पृ० 179)

वज्रपर्यङ्कः

वज्रपर्यङ्कशब्देन सन्ध्याभाषया पद्ममित्युक्तं भगवता। (डा० जा० सं० र०, पृ 3)
प्राणापानोपरोधादद्वयीभूताशेषसमाधिवज्रमयः पर्यङ्को यस्यासावशेषवज्रपर्यङ्कः। (अ० क०, पृ० 295)

वज्रपाणिः

वज्राणि आदर्शादिपञ्चज्ञानानि पाणी(णा)विवायत्वात्तादात्म्येन येषां तैस्तथागतैर्वज्रपाणिभिः। (अ० क०, पृ० 185)

वज्रपाशः

वज्रस्य चित्तवज्रस्य पाश इव पाशो यस्य स तथा, अन्तः प्राणबन्धेन चित्तवज्रस्यापि बन्धनात् । (अ० क०, पृ० 252)

वज्रमण्डः

दिव्यसुखास्वादरूपत्वाद् वज्रमण्डोऽभेद्यसारः । (अ० क०, पृ० 255)

वज्रमाला

वज्रं पीठोपपीठादिशरीरस्थानम् । लयभोगादिक्रमेण सहजोत्पत्तिर्वज्रमाला ।

(अ० क०, पृ० 258)

वज्रयोनिः

वज्राणां सर्वतथागतकायवाक्चित्तज्ञानवज्राणां योनिरुत्पत्तिस्थानम्, सहजानन्दोत्पत्तित्वात् । (अ० क०, पृ० 255)

वज्रसत्त्वः

अराभ्यां प्रज्ञोपायाभ्यां पचनं स्फुटीभावो यस्य स उष्णीषचक्रवर्ती वज्रसत्त्वः ।

(अ० क०, पृ० 205)

अभेद्यबोधिचित्तरूपत्वाद् वज्रसत्त्वः । (अ० क०, पृ० 256)

वज्राङ्कुशः

वज्रेणाङ्कुशवत् सर्वसुखसमाधीनामाकर्षणाद्वज्राङ्कुशः । (अ० क०, पृ० 252)

वागीश्वरः

अनाहतध्वनिसमुल्लासेन सर्वचित्तक्षणरूपबुद्धानामाप्यायनाद् वागीश्वरः ।

(अ० क०, पृ० 288)

विघ्नराट्

विघ्नो मारः स्वचित्तप्रसरः, "मारः स्वचित्तं न परोऽस्ति मारः" इति । तद्विनाशेन राजत इति विघ्नराट् (अ० क०, पृ० 255)

विचारः

विचारेण(रो) नाम भावप्रकाशः । (डा० जा० सं० र०, पृ० 5–6)

वितर्कः

वितर्को नाम भावग्रहणं चित्तस्य । (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

विधाता

भव्यतया सर्वमन्त्रमुद्राभिसमयमण्डलोत्सङ्गादिकरणाद् विधाता ।

(अ० क०, पृ० 251)

विमुक्तिः

प्राकृतरागादिबन्धनविगमेन पञ्चकामोपभोगेन महारागस्य सम्यक् परिज्ञानलाभाद् विमुक्तिर्भगवान् । उक्तं च—

[1]रागेन(ण) बध्यते लोको रागेनै(णै)व विमुच्यते ।
विपरीतभावना ह्येषा न ज्ञाता बुद्धतीर्थकैः ॥

[2]येनैव विषखण्डेन म्रियन्ते सर्वजन्तवः ।
तेनैव विषतत्त्वज्ञो विषेण स्फोटयेद्विषम् ॥

[3]यथा पावकदग्धाश्च स्विद्यन्ते वह्निना पुनः ।
तथा रागाग्निदग्धाश्च स्विद्यन्ते रागवह्निना ॥

[4]येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो रौद्रकर्मणा ।
सोपायेन तु तेनैव मुच्यन्ते भवबन्धनात् ॥

अन्यत्र च—

[5]तनुतरौ(र)चित्ताङ्कुरको विषयरसैर्यदि न सिच्यते शुद्धैः ।
गगनव्यापी फलदः कल्पतरुत्वं कथं लभते ॥
केचिद् विषयान् त्यक्त्वा केचिद् विषयानबाधितान् कृत्वा ।
केचिद्विषयैरेव तु नरवृषभाः [प्र]कुरुते बोधिम् ॥ (अ० क०, पृ० 283–248)

विमोक्षः

सम्यग् ज्ञानाग्निभस्मीकृतसत्त्वरजस्तमः स्कन्धत्वेन विमोक्षः । (अ० क०, पृ० 283)

---

1. हे० त०, 2.2 51
2. हे० त०, 2.2.46
3. हे० त०, 2.2.49
4. हे० त०, 2.2.50
5. च० को० व्या०, पृ० 4

विरमानन्दः

अहो ज्ञातमहो ज्ञातमहो ज्ञातमिदं स्फुटम् ।
इत्याभोगपरं चित्तं विरमानन्दमात्रकम् ॥ (अ० क०, पृ० 212)
विरमानन्दस्यालोचनात्मकया सांक्लेशिकरागनाशत्वान्निर्वाणरूपत्वम् । ....
सुखविकल्पतया विशिष्टत्वाद्विरागो विरमानन्दः । (अ० क०, पृ० 274)

विश्वराट्

विश्वं द्वासप्ततिनाडीसहस्रम्, तत्र सुखरूपेण राजत इति विश्वराट् ।
(अ० क०, पृ० 246)

विष्णुः

[1]"विनाशाद्(विषणाद्)विष्णुरुच्यते" मूत्रधातोरश्रावत्वात् स्वशरीरे विशना-(षणा)द् विष्णुरुच्यते । (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

विंशत्याकारसंबोधिः

षडङ्गभावनया विशुद्धावधूतीविशुद्धत्वेन पञ्चस्कन्ध-पञ्चेन्द्रिय-पञ्चायतनविशु-द्ध्याकारावबोधाद् विंशत्याकारसंबोधिः । (अ० क०, पृ० 309)

वीतरागः

प्रभास्वरप्रवेशेन विगतप्राकृतरागतया महासुखानुभवाद् वीतरागः ।
(अ० क०, पृ० 241)

वीरबीभत्सम्

वीरमच्युतबोधिचित्तत्वात् । बीभत्समाकाशक्षयत्वेन रूपं महारागस्वरूपम् ।
(अ० क०, पृ० 186)
उपायस्य करुणाङ्गत्वेन वीररसत्वम्, प्रज्ञायाः शून्यताङ्गत्वेन बीभत्सरसत्वम्
तद्द्वैधरूपं महासुखवीरबीभत्सरूपम् । (अ० क०, पृ० 298–299)

वैरोचनः

दुःखच्छेदो नाभिस्थो वैरोचनः । (अ० क०, पृ० 205)
प्रकृतिप्रभास्वरज्ञानं विरोचनः, स एव वैरोचनः । ......विरोचते दीप्यत इति विरोचनः । (अ० क०, पृ० 250)

---

1. हे० त०, 1.5.13

शान्तः

सहजसुखविहारित्वात् शान्तः। (अ० क०, पृ० 332)

शाश्वतः

सर्वरोमकूपाग्राकाशव्यापिबुद्धादिसंस्फरणरूपत्वात् शाश्वतः। प्रभास्वरनिष्ठतयाऽच्युतसुखत्वात् शाश्वतः। (अ० क०, पृ० 246)

शास्ता

षट्शताधिकैकविंशतिसहस्रश्वासानां महासुखभिन्नत्वेन शासनात् शास्ता।
(अ० क०, पृ० 188)

शास्ता नानादुःखदुःखितानां महासुखोदयशासनात्। (अ० क०, पृ० 319)

शिखण्डी

अनुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावेन ज्वलितसहजचण्डाली शिखा तद्योगात् शिखी। चर्ममांसरक्तानि मातृसूर्यसम्बद्धानि। अस्थिस्नायुशुक्राणि पितृचन्द्रसम्बद्धानि। तद्द्वययोगः शिखण्डः, तस्य निरावरणयोगेन योगाच्छिखण्डी।
(अ० क०, पृ० 282)

शिवः

[1]"शिवः सदा सुकल्याणात्" इति। कल्याणमण्डलशीलं(ल)शुक्रस्य च्यवनाभावाद् बुद्धः शिव उच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

शून्यताज्ञानस्वभावत्वात् सर्वतथागतज्ञानसत्त्वः शिवः। सदा सुकल्याणमिति कृत्वा अखण्डं शुक्रं शिवः। (अ० क०, पृ० 285)

शुद्धात्मा

महारागानलेन सकलस्कन्धधात्वायतनादीनां निरावरणीकरणात् शुद्धात्मा।
(अ० क०, पृ० 235)

शून्यता

तथा चोक्तम्—

शून्यतां ये न जानन्ति न ते जानन्ति निर्वृतिम्।
तस्माद्धि शून्यता ज्ञेया भावाभावविभावना ॥

---

1. हे० त०, 1.15.13

उक्तं च—

शुभाशुभविकल्पानां सन्ततिच्छेदलक्षणा ।
शून्यता गदिता बुद्धैर्नान्यत्(न्या वै) शून्यता मता ॥ इति ।

[1]शून्यता सर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःशरणं जिनैः ।
येषां तु शून्यतादृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे ॥ इति ।

(डा० जा० सं० र०, पृ० 9.10)

शून्यतागर्भः

सुखशून्याद्वयत्वेन शून्यतागर्भः । (अ० क०, पृ० 330)

शून्यताभावना

निराभासस्य चित्तस्य स्थितिराकाशलक्षणा ।
आकाशभावनैवैषा शून्यताभावना मता ॥ (अ० क०, पृ० 251)

शून्यतारतिः

सर्वधर्मस्वभावतथतावगमात् शून्यतारतिः । (अ० क०, पृ० 301)

शून्यतावादी

कायवाक्चित्तनिरोधेन स्वसंवेद्यसुखप्राप्तिः शून्यता, तत् प्रकाशनात् शून्यतावादी ।

(अ० क०, पृ० 262)

श्रवणम्

श्रवणमिति कुलिशास्फालनेन यत् क्षरं सुखम् । (डा० जा० सं० र०, पृ० 2)

श्रीमान्

श्रीरद्वयं ज्ञानम्, तदनुभवरूपत्वेन तादात्म्येन नित्ययोगात् श्रीमान् ।

(अ० क०, पृ० 179)

श्रीमानाकाशधातुपर्यन्तसहजानन्दरूपत्वात् । (अ० क०, पृ० 195)
श्रीमान् (अ)द्वैतज्ञानी (अ० क०, पृ० 258)
अद्वयस्वरूपपरमार्थसिद्धिश्रीयोगात् श्रीमान् । (अ० क०, पृ० 290)
उष्णीषादुच्छलितबोधिचित्तधारया सर्वाङ्गाप्यायनेन लौकिकलोकोत्तरसम्पत्तिमान् ।

(अ० क०, पृ० 298)

---

1. म० शा० 13.8

सर्वयोगिनां प्रियरत्नाच्युतत्वात् श्रीमान्। (अ० क०, पृ० 326)

षट्कुलम्

अथ शाक्यमुनिर्भगवान् सकलं मन्त्रकुलं महत्।
मन्त्रविद्याधरकुलं व्यवलोक्य कुलत्रयम्॥
लोकलोकोत्तरकुलं लोकालोककुलं महत्।
महामुद्राकुलं चाग्र्यं महोष्णीषकुलं महत्॥ (ना० सं०, पृ० 144)

उक्तं च श्रीकालचक्रे—

निस्पन्दानन्दशुक्रं कुलिशमपि च तद्धारणाद् वज्रधृग्वै
बीजं कायस्य शुक्रं जिनजिगिति पिता नाभिचक्रे सुखं यत्।
तल्लक्ष्यो लक्ष्यमानो(णो) हृदि परमसुखं नाथ आरोलिगेव
तद्वेद्यं येन कण्ठे धृतमचलसुखं वेदको रत्नधृक् सः॥

प्रज्ञाधृग् येन तन्त्रे शिरसि धृतमिदं शुक्रवैमल्यसौख्यं
उष्णीषे ब्रह्मरन्ध्रेऽक्षरपरमसुखं षोडशानन्दपूर्णम्।
या प्रज्ञा निःस्वभावा परमशशिकला षोडशी पूर्णिमान्ते
सानन्ता यस्य विद्याशिरसि स कुलिशे षष्ठमो वज्रसत्त्वः॥ (अ० क०, पृ० 198)

षट्पारमिताः

[2]दानं त्यागो धनस्याच्युतिरपि मनसः स्त्रीप्रसङ्गाच्च शीलं
क्षान्तिः शब्दाद्यवेशो ह्युभयगतिविनाशोऽनिलस्यैव वीर्यम्।
ध्यानं प्रज्ञा च चित्तं सहजसुखगतं सर्वगा सर्वभाषा॥ (अ० क०, पृ० 215)

षडक्षरः

षट्चक्रेष्वक्षरसुखवेदनात् षडक्षरः। (अ० क०, पृ० 259)

षडनुस्मृतिः

षट्चक्रसमाधिप्रविष्टदानादिपारमिताधारणास्मरणरूपत्वात् षडनुस्मृतिः।
(अ० क०, पृ० 321)

---

1. कालचक्रतन्त्र में ये दोनों पद्य उपलब्ध नहीं हैं।
2. का० त० 4.128

सत्यद्वयम्

संवृतिसत्यं मायोपमं स्वाधिष्ठानलक्षणम्, परमार्थसत्यं प्रभास्वरपरिज्ञानम्, तत् सत्यद्वयम् । (अ० क०, पृ० 241)

सद्धर्मः

संश्चासौ सद्गुरूपदेशलभ्यत्वाद् धर्मश्च एवंकाररूपः, सुखस्वलक्षणधारणात् सद्धर्मः ।
(अ० क०, पृ० 242)

सप्तक्षणाः

मध्यरागो विस्मृतिर्भ्रान्तिस्तूष्णीं खेद आलस्यं धन्धत्वमिति सप्त क्षणा आलोकोपलब्धिज्ञानस्य । (अ० क०, पृ० 310)

समन्तभद्रः

धूमादिनिमित्तस्फुटीभावेन समन्ततो भद्रं सहजानन्दं ज्ञानं यस्य स तथा ।
(अ० क०, पृ० 296)

समयचतुष्टयम्

कायवाक्चित्तज्ञानात्मकं समयचतुष्टयम् । .... तदुक्तं वज्रपादैः—"प्रज्ञाचुम्बनेनानन्दक्षणो भवति, स च कायसमयः । पद्मे वज्रप्रवेशेन परमानन्दक्षणो वाक्समयः । पद्मे वज्रस्फालनेन विरमानन्दक्षणश्चित्तसमयः । वज्रमणौ बोधिचित्तेनागतेन सहजानन्दक्षणो ज्ञानसमयश्चतुर्थः" इति । (अ० क०, पृ० 280)

समाधिकायः

समाधिकायो धर्मकायोऽयमेव सम्भोगनिर्माणकाययोराश्रयो यस्य स तथा ।
(अ० क०, पृ 318)

समाधिः

समाधिर्नाम इष्टदेवतानुरागाद् यदक्षरसुखप्राप्तिस्तस्यामेकीकरणम्, ग्राह्यग्राहकताविरहितं चित्तं समाध्यङ्गमुच्यते तथागतैः । (डा० जा० सं० र०, पृ० 6)

अचिन्त्यरूपत्वात् समाधिः। (अ० क०, पृ० 332)

समुदागमः

अनाभोगेनाधिगमरूपत्वात् समुदागमः। (अ० क०, पृ० 331)

सम्बुद्धः

सम्बुद्धं प्रबुद्धसुखम्। (अ० क०, पृ० 187)
सहजसुखोल्लासेन सर्वधर्मविबोधात् सम्बुद्धः। (अ० क०, पृ० 188)
उष्णीषादिषट्चक्रेषु ज्ञानकायावबोधात् सम्बुद्धः। (अ० क०, पृ० 193)
मणिवरटकस्थितशुक्रत्वेन नित्यप्रबुद्धवज्रत्वेन सम्बुद्धः। (अ० क०, पृ० 207)
षण्मण्डलाधिपतित्वात् सम्बुद्धः। (अ० क०, पृ० 320)

सर्वज्ञः

ज्ञानरूपेण सर्वधर्माणां संस्थापनात् सर्वज्ञः। (अ० क०, पृ० 286)

सर्ववित्

सर्वबुद्धमयभावग्रामावबोधनात् सर्ववित्। (अ० क०, पृ० 309)

सर्वः

[1]"सर्वः सर्वात्मनि स्थिति(तः)" इति। सर्वो रत्नसंभवः, स एव रक्तधातुस्तस्य च्यवनाभावाद् दुःखस्याभावः।......सर्वात्मनि स्थितो दिव्यचक्षुषा परचित्तज्ञान-व्यापकत्वाद् बुद्धः सर्व उच्यते। (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

सर्वाकारः

प्रत्याहारेण यो दृष्टो भावो घटादिकः प्रतिसेनातुल्यप्रतिभासः सर्वाकारः।
(अ० क०, पृ० 316)

संसारः

सम्यक् सारः संसारः। (अ० क०, पृ० 242)
पञ्चोपादानस्कन्धाः संसारः। (अ० क०, पृ० 267)

सिद्धान्तः

सदसत्पक्षविगमेन परमनिष्ठारूपत्वेन सिद्धान्तः। (अ० क०, पृ० 311)

सिद्धार्थः

सर्वधर्माणां ज्ञानाकारेण प्रतिभासकत्वात् सिद्धो निष्पन्नोऽर्थः परमार्थो यतो यस्य वा स तथा। (अ० क०, पृ० 244)

सुखम्

अचलं सुखं नाम सर्वभावेभ्यः सुखसम्पत्तिः। (डा० जा० सं० र०, पृ० 6)

सुगतः

अनासङ्गसुखतया संसारसुखात् प्रशस्तमपुनरावृत्त्या यावद् गन्तव्यतया गतः सुगतः।
(अ० क०, पृ० 241)

सुमतिः

सर्वविकल्पाभावेन सम्बोधिप्राप्तत्वेन शून्यताकारा शोभना मतिर्यस्य स तथा।
(अ० क०, पृ० 296)

सुरगुरुः

निःस्वभावो(वि)सर्वधर्मप्रकाशनेन बृहस्पतिस्वभावत्वात् सुरगुरुः। (अ० क०, पृ० 319)

सुरेन्द्रः

रत्नान्त उष्णीषगमनेन बलिरूपत्वात् सुरेन्द्र। (अ० क०, पृ० 318)

स्पर्शनम्

स्पर्शनमिति कमले वज्रप्रवेशनम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० 2)

स्मरणम्

स्मरणमिति गुरुवचनैः सह समाहितः। (डा० जा० सं० र०, पृ० 2)

स्वयम्भुवः

स्वयमात्मना हेतुनिरपेक्षत्वाद् भवति, साक्षाद् भवतीति स्वयम्भुवः।
(अ० क०, पृ० 189)

हठयोगः

एवञ्च हठयोगः—यदा प्रत्याहारादिभिर्दृष्टे बिम्बे सत्यक्षरक्षणेनोत्पद्यते। अयन्त्रित-प्राणतया नादनिदानाभ्यासात् सहजानन्दाभ्यासाद् हठेन हूँकारनादेन प्राणं मध्यमायां

वाहयेत् । एवं सुशिक्षितायास्तन्त्रोक्तगुणयुक्ताया अनुरागिताया वरकामिन्याः कक्कोले बोलं विधिवत् प्रक्षिप्य निष्कम्पतया विश्रम्य तस्याः किञ्जल्कमुखे वज्रमणिं निष्पीड्य निर्भर(निर्मल)प्रीतिरसेन क्षणं न चालयेत्ततस्तयोः क्षरद्दशोदये हूँकारोच्चारणपुरःसरं सद्गुरुप्रसादीकृतमामुखयतश्चतुर्थसहजानन्दानुभवेन बोधि-चित्तबिन्दुनिरोधस्ततोऽक्षरक्षणलाभः । एवं च समाध्यङ्गस्फुटीभाव इत्यर्थः ।

(अ० क०, पृ० 221-222)

हृष्टतुष्टाशयाः

हृष्टस्तादात्मिकसुखेन, तुष्ट आनुबन्धिकसुखेन, आशयः कायवाक्चित्तलोलीभूतः सहजकायो येषां ते हृष्टतुष्टाशयाः । (अ० क०, पृ० 186)

•

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन (४)

—डॉ० बनारसीलाल—

[पीठोपपीठादि के विवेचन के प्रसंग में पूर्व अंक में हेरुकमण्डल के अनुसार मण्डल में स्थित बीरेश्वरियों का स्वरूप प्रस्तुत किया गया था। उसी क्रम में प्रस्तुत अंक में संवरमण्डल के अनुसार मण्डल में स्थित बीरों के स्वरूप का विवेचन किया जा रहा है। पीठों के भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन की आवश्यकता तथा माहात्म्य पर भी प्रकाश डाला गया है।]

पीठोपपीठादि स्थान केवल बौद्ध तन्त्रों में ही प्रसिद्ध नहीं हैं, शैव-शाक्त तन्त्र सम्प्रदायों में भी इनका माहात्म्य प्रसिद्ध है, जैसे चौंसठ योगिनियों के पीठस्थान। इनमें अनेक पीठस्थान दोनों ही परम्पराओं में समान रूप से महत्त्व रखते हैं। बौद्ध तन्त्रों में वर्णित कुल कितने पीठ-स्थान हैं, इनका संकलन अभी अपेक्षित है। इसका प्रारम्भिक संकेत इसी शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के प्रथम अंक में दिया जा चुका है, जहाँ पैंतालीस पीठस्थानों का संकलन किया गया है। इसी प्रकार डाकार्णव महायोगिनीतन्त्र के पञ्चम पटल में वज्रडाक के देह के चार चक्रों में स्थित एक सौ बीस नाड़ियों तथा उनमें स्थित योगिनियों के पीठस्थानों का निर्देश है। तदनुसार नाभिचक्र में चौंसठ, हृदयचक्र में आठ, कण्ठचक्र में सोलह तथा मस्तकचक्र में बत्तीस पीठ-स्थान निर्देशित हैं। नाभिचक्र के चौंसठ तथा हृदयचक्र के आठ स्थान भारत के विभिन्न क्षेत्रों के नाम से इंगित हैं। कण्ठचक्र के सोलह पीठ योगिनियों के शरीरस्थ धातुओं के आधार पर तथा मस्तकचक्र स्थित पीठ देवियों के नामों के आधार पर बताये गये हैं। अनेक बौद्ध तन्त्र ग्रन्थ अभी अप्राप्त हैं, कुछ तन्त्र ग्रन्थ पाण्डुलिपियों के रूप में संरक्षित हैं तथा कुछ प्रकाशित हुए हैं। प्राप्त सम्पूर्ण साहित्य के आधार पर ही हम यह कहने में समर्थ होंगे कि बौद्ध तन्त्रों में इन पीठ-क्षेत्रों का क्या महत्त्व है।

शैव-शाक्त तन्त्र ग्रन्थों में आये पीठस्थानों का निर्देश डॉ० दिनेशचन्द्र सरकार ने अपने ग्रन्थ The Shakta Pithas में किया है। जहाँ परिशिष्ट में उन्होंने 554 पीठ स्थानों की सूची दी है। शैव-शाक्त तन्त्रों में पीठों के माहात्म्य के अध्ययन की दृष्टि से राघवभट्ट की शारदा-तिलकटीका, अर्थरत्नावली, योगिनीहृदय, प्रपञ्चसारक्रमदीपिका, ज्ञानार्णव, तन्त्रालोक, स्वच्छन्दतन्त्र तथा कौलज्ञाननिर्णय आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। जहाँ पीठों का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

पीठों का अध्ययन केवल तान्त्रिक माहात्म्य की दृष्टि से ही नहीं, अपितु प्राचीन भारतीय भौगोलिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ये पीठोपपीठादि क्षेत्र भारतवर्ष में करीब छठी-सातवीं शताब्दी से पूर्व प्रचलित हो चुके थे। म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने इसके समर्थन में कुब्जिकातन्त्र का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

गच्छ त्वं भारते वर्षे अधिकाराय सर्वतः।
पीठोपपीठक्षेत्रेषु कुरु सृष्टिमनेकधा॥

इस प्रकार प्राचीन भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन करने पर भी इन पीठों की प्रसिद्धि एवं माहात्म्य पर प्रकाश पड़ सकता है। अतः इसी शीर्षक के अन्तर्गत अग्रिम क्रम में इस विषय पर अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

सम्प्रति बौद्ध तन्त्रों में वर्णित प्रमुख चौबीस पीठों का अध्ययन अभिप्रेत है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ये पीठ बाह्य क्षेत्र के साथ-साथ स्वदेहस्थ भी हैं और इन पीठस्थानों में वीर एवं वीरेश्वरियाँ अवस्थित हैं। 'धीः' के १० वें अंक में मूर्तिविज्ञानीय अध्ययन की दृष्टि से इन पीठों में स्थित वीरेश्वरियों का स्वरूप प्रस्तुत किया गया था। उसी क्रम में प्रस्तुत अंक में चौबीस वीरों का स्वरूप सम्बर मण्डल के अनुसार प्रस्तुत किया जा रहा है। इन वीरों का स्वरूप अभी संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त नहीं हो पाया। उक्त विवरण प्रो० टुची के ग्रन्थ The Temples of Western Tibet and thier Artistic Symbolism (Indo Tibetica III-2, p. 38–42) के आधार पर दिया जा रहा है। संस्कृत ग्रन्थों में केवल अभयाकरगुप्त विरचित निष्पन्नयोगावली में इनके स्वरूप का संक्षेप में निर्देश है। वहाँ खण्डकपाल आदि वीरों का स्वरूप एकमुख, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, आलिंगित भुजाओं में वज्र तथा घण्टा एवं वाम हाथ में खट्वांग आदि दक्षिण हाथ में डमरु लिये हुए हैं। ब्रह्मसूत्र, केयूर से युक्त, करालवदन, पञ्चमुद्राओं से मुद्रित, आलीढपदस्थित हैं। प्रचण्डादि वीरेश्वरियाँ त्रिनेत्र, एकवदन, रौद्र रूप वाली, मुक्तकेश, नग्न, द्विभुज हैं। वीर आलिंगित भुजाओं में कपाल तथा कर्ति धारण किये हुए हैं।[1]

---

१. खण्डकपालादयो वीरास्त्रिनेत्रैकवक्त्रा जयमुकुटिनो ललाटनिविष्टवज्रमालाङ्कितवीरपट्टाश्चतुर्भुजाः, आलिङ्गनभुजाभ्यां वज्रवज्रघण्टे वामेन खट्वांगं सव्येन डमरुं बिभ्राणा ब्रह्मसूत्रकेयूरयुक्ता दंष्ट्राकरालवदनाः पञ्चमुद्रिण आलीढस्थाः। प्रचण्डादिदेव्यस्त्रिनयनैकवदना रौद्ररूपिण्यो मुक्तकेश्यो नग्ना द्विभुजा आलिङ्गितकरेण कपालं सव्येन दुष्टतर्जनकर्तिकां बिभ्रत्यः (निष्पन्नयोगावली, गा. ओ. सी., पृ० २७)

यद्यपि प्रस्तुत सन्दर्भ में वीरों के स्वरूप में स्पष्टतः भिन्नता निर्देशित नहीं है, अनेक वीरों का स्वरूप प्रायः समान ही दृष्टिगोचर होता है, निष्पन्नयोगावली में भी खण्डकपालादि वीरों का स्वरूप एक समान ही बतलाया है, तथापि काय, वाक् और चित्त चक्र के अनुसार किञ्चिद् भेद प्रतीत होता है। प्रत्येक चक्र में आठ-आठ वीर अवस्थित हैं। उसी क्रम में प्रथमतः कायवाक्चित्त चक्रों में स्थित वीरों का स्वरूप दिया जा रहा है।

1. खण्डकपाल

खण्डकपाल का स्वरूप एकमुख, नीलवर्ण, चतुर्भुज, दो भुजाओं द्वारा प्रज्ञा आलिंगित, जिनमें वज्र और घण्टा धारण किये हुए हैं। दायें हाथ में डमरु तथा बायें हाथ में खट्वांग धारण किये हुए हैं। इनकी शक्ति प्रचण्डा है, जो वीर को आलिंगित किये हुए है। दायें हाथ में तर्जनी मुद्रा, कर्ति और बायें हाथ में कपाल है।

2. महाकंकाल

जालन्धर पीठ में महाकंकाल स्थित हैं। इनका स्वरूप नीलवर्ण एकमुख चतुर्भुज है। दो भुजाओं द्वारा शक्ति को आलिंगित किये हुये हैं। हाथों में वज्र तथा घण्टा धारण किये हुए हैं। दायें हाथ में डमरु तथा बायें हाथ में खट्वांग धारण किये हुए हैं। इनकी शक्ति [प्र]चण्डाक्षी है।

3. कङ्काल

ओडियान पीठ में स्थित कङ्काल का स्वरूप नील वर्ण, द्विभुज, शक्ति को धारण किये हुए है। दायें हाथ में डमरु तथा बायें हाथ में खट्वांग है। इनकी शक्ति प्रभावती है।

4. विकटदंष्ट्रिन्

अर्बुद में स्थित विकटदंष्ट्रिन् नीलवर्ण के हैं। द्विभुज द्वारा शक्ति को आलिंगित किये तथा हाथों में वज्र तथा घण्टा धारण किये हुए हैं। दाँये हाथ में डमरु तथा बांये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति महानासा है।

5. सुरावेरिण (वैरी)

गोदावरी में स्थित सुरावेरिण नीले वर्ण के दो भुजाओं वाले हैं। शक्ति-आलिंगित भुजाओं में वज्र तथा घण्टा धारण किये हुए हैं। दाँये हाथ में डमरु तथा बायें हाथ में खट्वांग है। इनकी शक्ति वीरमती है।

6. अमिताभ

रामेश्वर में स्थित अभिताभ का स्वरूप नील वर्ण तथा दो भुजाओं वाला है। शक्ति को आलिंगित किये हुए है तथा हाथों में वज्र तथा घण्टा है। दायें हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग है। इनकी शक्ति खर्वरी है।

7. वज्रप्रभ

देवीकोट में स्थित वीर वज्रप्रभ नील वर्ण, द्विभुज द्वारा शक्ति को आलिंगित किये, हाथों में वज्र तथा घण्टा धारण किये हुए हैं। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग है। इनकी शक्ति लंकेश्वरी है।

8. वज्रदेह

मालव में स्थित वज्रदेह का स्वरूप नील वर्ण, द्विभुज द्वारा शक्ति को आलिंगित किये हुये, हाथों में वज्र तथा घण्टा है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग है। इनकी शक्ति द्रुमच्छाया है।

9. अङ्कुरिक

कामरूप में स्थित अंकुरिक का स्वरूप नील वर्ण, द्विभुज द्वारा शक्ति को आलिंगित किये और हाथों में वज्र तथा घण्टा लिये है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग है। इनकी शक्ति ऐरावती है।

10. वज्रजटिल

ओड्र में स्थित वज्रजटिल का स्वरूप रक्त वर्ण का है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग लिये हैं। इनकी शक्ति महाभैरवी है।

11. महावीर

त्रिशकुन में स्थित महावीर का स्वरूप रक्त वर्ण का है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हुए हैं। इनकी शक्ति वायुवेगा है।

12. वज्रहूंकार

कौशल में स्थित वीर वज्रहूँकार का स्वरूप रक्त वर्ण का है। दांये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग लिये हैं। इनकी शक्ति सुराभक्षी है।

13. सुभद्र

कलिंग में स्थित सुभद्र का स्वरूप रक्त वर्ण का है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग लिये हैं। इनकी शक्ति श्यामादेवी है।

14. वज्रभद्र

लम्पाक में स्थित वज्रभद्र का स्वरूप रक्त वर्ण का है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हुये हैं। इनकी शक्ति सुभद्रा है।

15. महाभैरव

कांची में स्थित महाभैरव का स्वरूप रक्तवर्णी है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति हयकर्णा है।

16. विरूपाक्ष

हिमालय में स्थित वीर विरूपाक्ष का स्वरूप रक्तवर्णी है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग लिये हैं। इनकी शक्ति खगानना है।

17. महाबल (चण्ड)

प्रेतपुरी में रक्तवर्णी महाबल हैं। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हुए हैं। इनकी शक्ति चक्रवेगा है।

18. रत्नवज्र

गृहदेवता में स्थित वीर रत्नवज्र का स्वरूप श्वेत वर्ण का है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति खण्डरोहा है।

19. हयग्रीव

सौराष्ट्र में स्थित हयग्रीव श्वेत वर्ण के हैं। ये दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति सौण्डिनी है।

20. आकाशगर्भ

सुवर्णद्वीप में आकाशगर्भ स्थित हैं। इनका वर्ण श्वेत तथा दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति चक्रवर्मिणी है।

21. श्रीहेरुक

नगर में श्रीहेरुक अवस्थित हैं। इनका वर्ण श्वेत है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग लिये हैं। इनकी शक्ति सुवीरा है।

22. पद्मनर्तेश्वर

सिन्धु में पद्मनर्तेश्वर स्थित हैं। इनका वर्ण श्वेत है। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति महाबला है।

23. वैरोचन

मरु में स्थित वैरोचन श्वेत वर्ण के हैं। दाँये हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हुये हैं। इनकी शक्ति चक्रवर्तिनी है।

24. वज्रसत्त्व

कुलूत में स्थित वज्रसत्त्व श्वेत वर्ण के हैं। दाँयें हाथ में डमरु तथा बाँये हाथ में खट्वांग धारण किये हैं। इनकी शक्ति महावीर्या है।

•

महामुद्रा दर्शन : एक विश्लेषण

—डॉ० टशी सम्फेल—

['धीः' के नवें अंक में महामुद्रा नाम की निरुक्ति, उसके पर्यायभेद और सूत्र तथा तन्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित महामुद्रा के स्वरूप आदि पर तथा दसवें अंक में महामुद्रा की परम्परा और उसकी विभिन्न साधनाविधियों पर प्रकाश डाला गया था। उसी क्रम में यहाँ विभिन्न स्रोतों से मिली सामग्रियों के आधार पर संक्षेप में महामुद्रा दर्शन का एक विश्लेषणात्मक विवरण प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।]

कुछ लोगों का कहना है कि महामुद्रा, महासम्पन्न और चीनी (जेन) मत में कोई भेद नहीं है। ऐसा कहना केवल उनका कथन मात्र है। महासम्पन्न तो अतियोग नाम से मन्त्रयान के प्रकर्ष की पराकाष्ठा, अर्थात् अन्तिम स्वरूप है। जेन मत अशीति (80) सूत्र[1] का अनुगमन करता है। इन दोनों में भावनाक्रम में भिन्नता तो है ही, मूल स्रोत में भी भेद है। चीनी परम्परा में महासम्पन्न की परम्परा होने की चर्चा किसी भी प्रामाणिक विद्वान् ने नहीं की है। यदि महासम्पन्न को जेन मत की भावनाविधि कहें, तो धर्म को अधर्म कहने का अपवाद एवं उपेक्षा करना होगा। पुनः वहीं महामुद्रा दर्शन को भी चीनी उपाध्यायों के ग्रन्थों का आधार मानकर उनके स्वरूप और उनके दर्शन का मात्र (महामुद्रा) नाम बदल दिया गया है, वह तो प्रायः चीनी परम्परा ही है—ऐसा कहना भी अपने में मनगढन्त एवं झूठी धारणा तथा आक्षेप मात्र है, क्योंकि चीनी उपाध्यायों के दर्शन के आधार पर बाद में उसका महामुद्रा नाम परिवर्तित हुआ हो - ऐसा कोई भी ठोस प्रमाण अथवा तथ्य उपलब्ध नहीं होता। महामुद्रा का नाम तो जेन मतावलम्बियों के तिब्बत आने से पहले ही अनेकों मूल तन्त्रों, टीकाओं तथा भारतवर्ष और तिब्बत के पण्डितों व सिद्धों में प्रतिष्ठित हो चुका था। प्रायः महामुद्रा से सम्बन्धित शास्त्रों, तन्त्र ग्रन्थों और उनके दर्शनों से अनभिज्ञ होने के अपने दोषों को छिपाकर धर्म को अधर्म के रूप में प्रकट करने की जो कुचेष्टा है, वह स्वयं न जानते हुए भी अपलाप किया गया व्यर्थ का आरोप मात्र है। अतः यह निष्पक्ष लोगों के लिये परीक्षण का विषय भी नहीं है, क्योंकि महामुद्रा

---

1. सेर-स्मद्-द्गे-ब्शेस्-द्बङ्-फ्युग द्वारा लिखित ग्रुब्-म्थाई-ऽग्युङ्-व-ब्र्जोद्-प नामक ग्रन्थ जो 1984 में तिब्बत के रिगङोस-दोदम-ऊयोन ल्हनखङ् से प्रकाशित हुआ है के पृ० सं० 131 में सूत्र को ह्वशङ् द्वारा रचित एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में लिया है।

दर्शन त्रिदोही[1], सप्तसिद्धि[2] और २५ अमनसिकार[3] में आये दर्शन को ही प्रतिपादित करता है।

---

1. राजा दोहा, रानी दोहा और प्रजा दोहा। (तिब्बती-चीनी कोश भाग द्वितीय पृ० 1297)।

2\. 1. श्रीपद्मवज्रपादविरचित गुह्यसिद्धि
   2. सकलतन्त्रसम्भवसंचोदनी श्रीगुह्यसिद्धि। (तो० सं० 2217)
   3. अनंगवज्र की प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि (तो० सं० 2218)
   4. ज्ञानसिद्धि नामसाधना (तो० सं० 2219)
   5 अद्वयसिद्धि साधनानाम (तो० सं० 2220)
   6. श्रीसहजसिद्धिनाम (तो० सं० 2223)
   7. श्रीओडियानविनिर्गतगुह्यमहाज्ञातत्त्वोपदेशः (तो० सं० 2221)

3 1. तत्त्वरत्नावली — तोहकु सं० 2240, वी० 115क[4] 120क[1]
   2. दोहानिधिनामतत्त्वोपदेश — तो० सं० 2247, वी० 137क[3] 137ख[6]
   3. अमनसिकाराधार — तो० सं० 2249, वी० 138ख[4] 140क[5]
   4. थब्म-ख्याद्-दु-ग्सोद्-प—ब्ज्लोग—पाई-प्योरत्नावाङ्न-सेल ?
   5. कुदृष्टिनिर्घातटीका — तो० सं० 2231, वी० 110क[6] 111क[3]
   6. कुदृष्टिनिर्घाताधिक्रम — तो० 2229, वी० 104ख[7] 110क[2]
   7. सेकनिर्देश — तो० सं० 2252 वी० 141ख[?] 143क[2]
   8. सेकतान्वयसंग्रह — तो० सं० 2243, वी० 122ख[4] 124ख
   9. संक्षिप्त सेकप्रक्रिया — तो० सं० 2244, वी० 125ख[7] 134ख[3]
   10. पंचाकार — तो० सं० 2245, वी० 134ख[3] 136ख[6]
   11. पंचमुद्राविवरण — तो० सं० 2242, वी० 120ख 122ख
   12. प्रेमपंचक — तो० सं० 2246, वी० 136ख[6] 137ख[3]
   13. निर्वेधपंचक — तो० सं० 2238, वी० 114क[3] 114ख[7]
   14. मध्यमकषट्क — तो० सं० 2230, वी० 110क[2] 110क[6]
   15. सहजषट्क — तो० सं० 2232, वी० 111क[3] 111क[7]
   16. महायानविंशिका — तो० सं० 2248, वी० 137ख[7] 138ख[1]
   17. तत्त्वविंशिका — तो० सं० 2250, वी० 140-141
   18. महासुखप्रकाश — तो० सं० 2239 वी० 114ख-115क
   19. युगनद्धप्रकाश — तो० सं० 2237, वी० 113क-114
   20. स्वप्ननिरुक्ति — तो० सं० 2233, वी० 111क-111ख
   21. मायानिरुक्ति — तो० सं० 2234, वी० 111ख-112क
   22. तत्त्वदशक — तो० सं० 2236, वी० 112ख[7] 113क
   23. तत्त्वप्रकाश — तो० सं० 2241, वी० 120क[1] 120ख[3]
   24. अप्रतिष्ठानप्रकाश — तो० सं० 2235, वी० 112क-120ख
   25. अबोधबोधक — तो० सं० 2297, जी० 226ख[3] 227ख[5]

कुछ लोगों का कहना है कि चीनी ह्वशङ् व्यवहार (चर्या) में हेतु फल को नहीं स्वीकार करते तथा दर्शन और भावना की अवस्था में अस्सीसूत्रपिटक को आधार मानकर भद्र-अभद्र आदि किसी भी प्रकार की कल्पना का आलम्बन नहीं करते। फल अवस्था में चित्त के स्वरूप का बोध करने के अतिरिक्त बुद्ध को भी स्वीकार नहीं करते। अतः आजकल के महामुद्रा की भावना करने वाले लोग भी उसी मत के लगते हैं, ऐसा कहकर वे लांछन लगाते हैं। परवर्ती कुछ लोग भी जो अपने को सुविज्ञ समझते हैं, विवेक से परीक्षण किये बिना पुनः उस कथन की आवृत्ति करते हैं। उनका ऐसा करना तो पूर्वपक्ष के सिद्धान्त, दर्शन और भावना के मर्म ज्ञान को न जानकर केवल अपलाप करना और आरोप करना मात्र लगता है। भावना-क्रम में कमलशील ह्वशङ् के मत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

"यस्तु मन्यते—चित्तविकल्पसमुत्थापितशुभाशुभकर्मवशेन सत्त्वाः स्वर्गादिकर्मफलमनुभवन्तः संसारे संसरन्ति। ये पुनर्न किञ्चिच्चिन्तयन्ति नापि किञ्चित् कर्म कुर्वन्ति ते परिमुच्यन्ते संसारात्। तस्मान्न किञ्चिच्चिन्तयितव्यम्। नापि दानादिकुशलचर्या कर्तव्या। केवलं मूर्खजनमधिकृत्य दानादिकुशलचर्या निर्दिष्टेति। तेन सकलमहायानं प्रतिक्षिप्तं भवेत्। महायानमूलत्वाच्च सर्वयानानां तत्प्रतिक्षेपेण सर्वम् एव यानं प्रतिक्षिप्तं स्यात्। तथा हि "न किञ्चिच्चिन्तयितव्यमिति" ब्रुवता भूतप्रत्यवेक्षालक्षणा प्रज्ञा प्रतिक्षिप्ता भवेत्। भूतप्रत्यवेक्षा-मूलत्वात् सम्यग्ज्ञानस्य तत्प्रतिक्षेपाल्लोकोत्तरापि प्रज्ञा प्रतिक्षिप्ता भवेत्। तत्प्रतिक्षेपात् सर्वाकारज्ञता प्रतिक्षिप्ता भवेत्। नापि दानादिचर्या कर्तव्येति वदता चोपायो दानादिः स्फुटतरमेव प्रतिक्षिप्तः[1]।"

अर्थात् जो लोग यह मानते हैं कि चित्तविकल्प से उत्पन्न होने वाले शुभ तथा अशुभ कर्मों के वशीभूत होने से सत्त्व स्वर्ग आदि के कर्म-फल को भोगते हुए संसार में घूमते रहते हैं और जो लोग कुछ भी नहीं सोचते हैं, और कुछ भी कर्म नहीं करते हैं, वे लोग संसार से मुक्त हो जायेंगे। इसलिये कुछ भी सोचना नहीं चाहिये। दान आदि कुशल चर्या भी नहीं करनी चाहिये, (क्योंकि) दान आदि कुशलचर्या तो मूर्ख पुरुषों को लक्ष्य करके कही गयी है।

ऐसा सोचकर उसका अनुसरण करने वाले तो अशेष महायान से बहिष्कृत हैं। सभी यानों का मूल तो महायान है, अतः उसके त्याग से सभी यानों का त्याग होगा। इस प्रकार कुछ भी नहीं सोचना चाहिये, ऐसा कहने वाले लोग असम्यक् प्रत्यवेक्षण हैं। उसके त्याग से लोकोत्तर प्रज्ञा का भी त्याग होगा। पुण्य आदि कार्यों को त्यागने के लिये कहकर उपाय का त्याग किया जाता है, इत्यादि। इसी प्रकार ह्वशङ् संचय-विशोधन, अर्थात् पुण्य के

---

1. भावनाक्रम तृतीय, पृ० सं० 232, के० उ० ति० शि० सं०, सारनाथ 1985

संचय और पाप के प्रायश्चित्त (विशोधन) आदि को कर्म के परम तत्त्व को न जानने वाले मूर्खों के लिये बुद्ध द्वारा उपदिष्ट है—ऐसा मानते हैं, वास्तव में इस प्रकार वे कर्मफल अर्थात् उपाय पक्ष की अवहेलना करते हैं। यहाँ महामुद्रा के साधक बोधिचर्यावतार[1] आदि महायान ग्रन्थों में शून्यता का साक्षात्कार करने के लिये हेतु रूपी उपायों की प्राथमिकता पर जोर देते हैं। यहाँ हेतु से फल का उदय, अर्थात् शून्यता को जानने पर भी हेतुफल रूपी प्रतीत्यसमुत्पाद को जानने का प्रयास किया जाता है, उसकी उपेक्षा नहीं की जाती। उसी प्रकार परमार्थ में सर्व धर्मों की निःस्वभावता में एकरसता तथा सांवृतिक प्रतीत्यसमुत्पाद का सम्यक् ज्ञान होना, न होना, संवृति के वश में होना, न होना, रूप काय के बीजारोपण का बोध होना न होना आदि अनेक अतिसूक्ष्म भेद हैं।

भावना अवस्था में ह्वशङ् कुछ भी मनस्कार नहीं करते। महामुद्रा की भावना में तो आदिचित्त में निर्विक्षिप्त होकर स्मृति के औद्धत्य एवं स्त्यान के परित्याग हेतु सम्प्रजन्य युक्त (सावधान) होकर स्थित होना चाहिये—ऐसा कहा गया है। ह्वशङ् भावना करते समय कुछ भी विचार नहीं करने के लिये कहते हैं, लेकिन महामुद्रा में तो प्रत्यवेक्षण प्रज्ञा से भावना के विषय का निरीक्षण करना होता है। ह्वशङ् तो स्मृति वेदना रहित अव्याकृत अमनस्कार स्वरूप में स्थित होते हैं। यहाँ तो भावना विषय (आलम्बन) में स्वस्मृति एवं सम्प्रजन्य का एक क्षण भी त्याग किये बिना समाहित रहना पड़ता है। ह्वशङ् तो निर्विचार मात्र से सन्तुष्ट हैं, लेकिन यहाँ उस प्रकार की भावना को भ्रामक व भटकाने वाली माना गया है तथा ऐसे दोषों का नाश करना चाहिये—ऐसा कहा है।

दर्शन अवस्था में ह्वशङ् चिन्तामयी और भावनामयी प्रज्ञा को नहीं मानते, लेकिन यहाँ उन दोनों प्रकार की प्रज्ञाओं से वस्तुस्थिति का दर्शन माना गया है, अतः उन्हें खोजकर जानना चाहिये। ह्वशङ् तत्त्वभूत दर्शन से रहित हैं। लेकिन यहाँ सभी ग्राह्य-ग्राहक के मूल आश्रय का विच्छेद कर वस्तुस्थिति का बोधकर दर्शन में समाहित होना चाहिये—ऐसा कहा गया है।

फल अवस्था में ह्वशङ् अमनस्कार मात्र की भावना से मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं। जब कि यहाँ तथता में अविक्षिप्त भावना करके सूक्ष्म से सूक्ष्म द्वयता से अशेष परिशुद्ध होना चाहिये—ऐसा कहा गया है।

---

1. इमं परिकरं सर्वं प्रज्ञार्थं हि मुनिर्जगौ।
तस्मादुत्पादयेत् प्रज्ञां दुःखनिवृत्तिकाङ्क्षया ॥

(बो० च० 9·1)

कुछ विद्वानों का मत है कि महामुद्रा अभिषेक और द्विक्रम समाधि से उत्पन्न होती है। निःसन्देह द्विक्रम समाधि भावना के सहारे सामान्यतया चार मुद्राओं का और असामान्य वस्तुस्थिति का, अर्थात् महामुद्रा का ज्ञान समुदित होता है। तृतीय अभिषेक के सहारे प्रश्रब्धि सुख एवं काय विज्ञान के साथ आह्लाद वेदना जो शून्यता से मुद्रित है और जो अनुभव का विषय है, उसे महामुद्रा माना गया है, किन्तु वह सर्वथा उचित नहीं प्रतीत होता। जैसे कि इन्द्रभूति ने भी कहा है—

[1]सुखं द्वीन्द्रियजं केचित् तत्त्वमाहुर्नराधमाः।
तच्चापि महासुखं नैव प्रवदन्ति जिनोत्तमाः॥ 1॥
प्रतीत्योत्पादसंभूतं न तत्त्वं जायते क्वचित्।
न तत्सुखं स्वभावेन विद्यते सर्वदा यतः॥ 2॥
सर्वताथागतं ज्ञानं स्वसंवेद्यस्वभावकम्।
सर्वसौख्याग्रभूतत्वात् महासुखमिति स्मृतम्॥ 3॥
अनित्यं महासुखं नैव सदा नित्यं महासुखम्।
कच्छकण्डूयनोत्पन्नं महासुखं नहि (भवेत्)॥ 4॥

इत्यादि प्रकार से बहुत से आचार्यों ने निषेध किया है। कालचक्र में वर्णित अक्षर सुख से भी इसका विरोध होता है। यह वासनात्मक होने एवं इन्द्रियजन्य सुख होने से विकारयुक्त और क्षणिक है। अतः इस सुख को विश्लेषणात्मक शून्यता से मुद्रित भी नहीं किया जा सकता, अर्थात् यह शून्यतास्वरूप सुख नहीं हो सकता।

पुनः दूसरों के मत में तृतीय अभिषेक में सन्निपतित (इन्द्रिय) सुख की उपमा ज्ञान के समुदय के रूप में दी गई है तथा चतुर्थ अभिषेक के समय परमार्थ ज्ञान को निष्प्रपंचात्मक स्वरूप से व्यवहृत करके उच्छेदात्मक शून्य का परिचय कराया गया है, जो युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि ऐसा स्वीकारने पर ऊपर उद्धृत कालचक्र और ज्ञानसिद्धि में किये गये खण्डन का पूर्वपक्ष भी अनायास स्वीकारना होगा। उपमा ज्ञान और उपमेय ज्ञान दोनों में यहाँ सुखात्मक ज्ञान है, जो प्रतीत्यसमुत्पन्न है, अतः इन दोनों में कार्यकारण का सम्बन्ध होना चाहिये, जब कि उनके मत में यह विरोधाभास है तथा विपरीत दिखता है।

दूसरे कुछ विद्वानों ने महामुद्रा ज्ञान हो तो उसे अभिषेक के द्वारा उत्पन्न होना चाहिये—ऐसी जो व्याप्ति स्वीकार की है, वह भी युक्तिसंगत नहीं लगती, क्योंकि यदि ऐसा हो तो सर्व धर्मों

1. ज्ञानसिद्धि 7/1-4

का आदि स्वभाव एवं आश्रय महामुद्रा भी क्या अभिषेक द्वारा प्राप्त करनी होगी ? इस प्रकार आश्रय महामुद्रा को स्वीकार न करने पर आश्रय में स्थित होकर मार्ग के अभ्यास द्वारा फल की प्राप्ति या फल का अभिमुख होना भी असम्भव एवं अनुचित होगा, क्योंकि आश्रय के अभाव में कार्य एवं फल की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। आश्रय महामुद्रा ही फल महामुद्रा का हेतु होती है। महामुद्रा ज्ञान हो तो निश्चित ही उसे अभिषेक द्वारा प्राप्त करना चाहिये। इस प्रकार के मत को स्वीकार करने से सरहपाद, आचार्य नडपाद आदि द्वारा उपदिष्ट महामुद्रा और इन्द्रभूति आदि द्वारा प्रतिपादित सप्त सिद्धियों को अस्वीकार करना पड़ेगा, ऐसी स्थिति में धर्म-त्याग के महापाप का भागी बनना पड़ेगा और उन सिद्धाचार्यों को भी मिथ्या दृष्टि वाले मानकर उनका भी खण्डन करना होगा।

महामुद्रा मार्ग का स्वरूप

महामुद्रा के मार्ग के स्वरूप में विद्वानों में मतवैभिन्य है। सिद्ध-साहित्य और महामुद्रा को सूत्र और तन्त्र में से गुह्यमन्त्र (तन्त्र) में स्वीकार किया गया है। तन्त्र परम्परा में भी अधिष्ठान मार्ग, प्रोत्साहक (उच्छ्वास कारक) मार्ग और प्रत्यक्ष मार्ग इनमें से महामुद्रा को अन्तिम, अर्थात् प्रत्यक्ष मार्ग माना है और साधक के परिपाक के लिये विस्तार या सारांश में महामुद्रा की भावना के लिये अभिषेक की अनिवार्यता पर जोर दिया है।

गुह्यचर्या में विनेय जनों की मृदु, मध्यम और उत्तम बुद्धि के अनुसार सम्पूर्ण बौद्ध महायानी वाङ्मय को पारमितानय, गुह्यमन्त्रनय तथा अनुत्तरगर्भनय तीन भागों में विभक्त किया गया है। महामुद्रा अन्तिम, अर्थात् अनुत्तरगर्भनय कहलाता है। यह मार्ग अन्य पारमितानय और गुह्यमन्त्रनय से जहाँ अविरुद्ध है वहीं कुछ विचारों में उसमें विशेषता है। जहाँ मार्ग के कुछ अंश पारमितानय के सदृश हैं, वहीं यह अनुत्तरगर्भ मार्ग परिष्कृत और विशिष्ट हैं। जैसे कभी-कभी कुछ साधकों को अनिवार्य रूप से अभिषेक प्राप्त कर इष्टदेव की भावना करनी पड़ती है, जो गुह्यमन्त्र के सदृश हैं। लेकिन वहीं कभी-कभी ब्राह्मण सरहपाद—

मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण।
सव्वं वि रे वढ़ विब्भम कारणम् ॥[1]

---

1. मन्त्रं न तन्त्रं न ध्येयं न धारणम्।
सर्वमपि रे मूर्ख ! विभ्रमकारणम् ॥ (दो॰ को॰ 20)

आदि कहकर अभिषेक, इष्टदेव की भावना आदि का खुल कर विरोध करते हैं और कहते हैं कि महामुद्रा त्रिप्रत्ययों से रहित, चार आनन्दों से ऊपर, विशेष प्रभास्वर (प्रज्ञोपाय अद्वय) स्वरूप है तथा साधक को तत्त्व में स्थित होना चाहिये।

तिब्बत के चार बौद्ध सम्प्रदायों में कार्ग्युद् परम्परा के महान् सिद्धाचार्य द्गसपो रिन्पोछे ने साधना मार्ग को तीन भागों में बाँट कर प्रतिपादित किया है—

1. **अनुमान मार्ग**

स्वभाव परिच्छेदक एकानेक वियोग आदि पाँच माध्यमिक लिङ्गों द्वारा सर्व धर्मों को निःस्वभाव, चतुष्कोटि, निष्प्रपञ्च प्रतिपादित कर उसमें स्थित करना पारमिता मार्ग है।

2. **अधिष्ठित मार्ग**

शरीर में देवयोग (उत्पत्तिक्रम) तथा नाड़ी-वायु आदि उत्पन्नक्रम की भावना करना अधिष्ठित मार्ग है।

3. **प्रत्यक्ष मार्ग**

चित्त अवस्था अनादि काल से शून्य प्रभास्वर है, उसी में समाहित रहना प्रत्यक्ष मार्ग है।

पुनः त्रिमार्ग में आश्रय विवर्तन मार्ग तो पारमिता है, क्योंकि इसमें हेय और प्रतिपक्ष को पृथक् करके भावना की जाती है। आधार विवर्तन मार्ग गुह्यतन्त्र कहलाता है। आश्रय विवर्तन का अर्थ शरीर को देव रूप में परिवर्तित करना एवं आश्रित विवर्तन का अर्थ इन्द्रियों को वज्र और पद्म में परिवर्तित करना है। धर्म विवर्तन क्लेश का मार्गीकरण करना, कल्पना को ज्ञान के रूप में परिवर्तित करना, मल से मल को धोना, कल्पना से कल्पना को काटना, आश्रय मार्ग का बोध करना है और यही महामुद्रा है। त्याग नहीं, प्रतिपक्ष नहीं, विकार नहीं, विकारणीय नहीं, सभी चित्त के स्वभाव हैं। जो चित्त तत्त्व अनादि से अनुत्पन्न एवं धर्मकाय स्वभाव से (अपने में) निहित है, उसका बोध एवं दर्शन कर अभ्यस्त होना बुद्धत्व प्राप्त करना है।

पुनः त्रिमार्ग हैं—मृद्विन्द्रिय पुद्गल की दृष्टि से सम्भार मार्ग में अनुप्रवेश करना पारमिता है। मध्य-इन्द्रिय वालों द्वारा कल्पना और संक्लेशों का उपाय के रूप में परिवर्तन करने वाले मार्ग में अनुप्रवेश करना गुह्य तन्त्र है। तीक्ष्ण-इन्द्रिय प्रज्ञा वालों द्वारा तथता में अनुप्रवेश करना महामुद्रा है।

ऐसा कथन कर वे सूत्र और तन्त्र दोनों से पृथक् कोई बीच का मार्ग (सहज) होने का अभिमत रखते हैं । कई अवस्थाओं में तो वे अधिष्ठित मार्ग का ऐसा भी व्यवहार करते हैं कि एक प्राप्ताधिगम गुरु के द्वारा एक योग्य शिष्य को, जिसने लौकिक धर्म का परित्याग किया है, महामुद्रा के बोधहेतु सूत्र और तन्त्र के बिना एकल महामुद्रा मार्ग का उपदेश दिया जा सकता है और उसके द्वारा वह मुक्त हो सकता है—ऐसा अभिमत रखते हैं ।

बाद के साधना-परम्परा वालों ने सूत्र और तन्त्र दोनों के अनुरूप व्यवस्था करके परिपाक हेतु अभिषेक की अनिवार्यता तथा अभ्यस्त होने पर सूत्र और मन्त्रों के सामान्य रूप से आचरण पर जोर दिया है, अर्थात् दोनों का उचित रूप से आचरण होने से इसे सूत्र और मन्त्र दोनों के गम्भीर मार्ग के रूप में भी स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती ।

आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति श्लोकार्धानुक्रमणी

– डॉ० बनारसीलाल –

[आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीति बौद्ध तन्त्रों में अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। आकार में लघु होने पर भी अर्थ गाम्भीर्य एवं महत्त्व के कारण बौद्ध तन्त्रों के सार के रूप में प्रसिद्ध है। दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना की पत्रिका 'धीः' के १, ३ एवं चौथे अंक में 'नामसंगीति की अध्ययन सामग्रियां' शीर्षक से विस्तार से इस विषय पर लिखा जा चुका है। इस ग्रन्थ का कई विद्वानों ने सम्पादन किया है। सर्व प्रथम रूसी विद्वान् मिनाइव ने इसे 1885 में पिटर्सवर्ग युनिवर्सिटी से प्रकाशित किया। उसके पश्चात् प्रो० रघुवीर ने शतपिटक सीरीज भाग-18 में प्रकाशित किया। 1963 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से दुर्गादास मुखर्जी ने सम्पादित कर प्रकाशित किया। इधर अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पणियों के साथ इसके दो संस्करण सामने आये हैं। उनमें एक रोनाल्ड डेविडसन का है जो 'The litany of Names of Mañjuśrī' नाम से Tantric and Taoist Studies. Mélanges Chinois et Buddhiques, Vol xv में Bruxelles से 1981 में प्रकाशित हुआ तथा दूसरा प्रो० एलेक्स वेमेन ने Chanting the Names of Mañjuśrī Nāmasaṅgīti के नाम से प्रकाशित किया।

इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि के कारण ही तन्त्र ग्रन्थों की टीका-टिप्पणियों में टीकाकारों ने इसके वचनों को बहुलता से उद्धृत किया है। कालचक्रतन्त्र की टीका विमलप्रभा के टीकाकार तो नामसंगीति को साक्षी मान कर ही कालचक्र के पदों का अर्थ करते हैं तथा स्थल-स्थल पर अपनी बातों को पुष्ट करने के लिये नामसंगीति के वचनों को उद्धृत करते हैं। कई स्थलों पर मायाजाल एवं कई स्थलों पर परिच्छेदों के नाम से भी इसके वचन उद्धृत मिलते हैं। अध्येताओं को सरलता से ये वचन मिल सकें, इस उद्देश्य से इसकी श्लोकार्धानुक्रमणी प्रस्तुत की जा रही है, जो श्लोकों की गणना एवं परिवर्तों के आधार पर भी दी गई है।]

	परिवर्त/श्लोक	श्लोक.सं०		परिवर्त/श्लोक	श्लोकसं०
अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ	4.2	26	अथ वज्रधरः श्रीमान्	1.1	1
अकलः कलनातीतः	10.3	145	अथ वज्रधरः श्रीमान्	14.1	163
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो	5.1	28	अथ शाक्यमुनिर्भगवान्	2.1	17
अच्लैकजटाटोपो	7.3	69	अथ शाक्यमुनिर्भगवान्	3.1	23
अजयोऽनुपमोऽव्यक्तो	8.21	97	अद्वयो द्वयवादी च	6.6	47
अज्ञानपङ्कमग्नानां	1.8	8	अनक्षरो मन्त्रयोनिः	10.1	143
अट्टहासो महाहासो	7.4	70	अनङ्गकायः कायाग्र्यः	9.24	142

	परिवर्त/श्लोक	श्लोकसं०
अनादिनिधनो बुद्धः	8.24	100
अनादिर्निष्प्रपञ्चात्मा	6.5	46
अनुत्पादधर्मविश्वार्थः	8.40	116
अनुत्पादधर्मिणीं गाथां	4.1	25
अनुमोदामहे नाथ	14.3	165
अन्यैश्च बहुभिर्नाथै	14.2	164
अप्रतिष्ठितनिर्वाणो	8.2	78
अप्रधृष्यो महेशाख्य	8.4	80
अभवोद्भव नमस्तुभ्यं	11.4	161
अमरेन्द्रः सुरगुरुः	10.6	148
अमेयबुद्धनिर्माण	9.16	134
अमोघपाशो विजयी	6.25	66
अरजो विरजो विमलो	8.22	98
अरूपो रूपवानग्र्यो	8.3	79
अर्चनीयतमो मान्यो	10.10	152
अर्हन् क्षीणास्रवो भिक्षु	6.11	52
अविद्याण्डकोशभेत्ता	8.7	83
अवैवर्तिको ह्यनागामो	6.10	51
अशेषक्लेशनाशाय	1.15	15
अशेषभावार्थरतिः	9.6	124
अशेषभैषज्यतरुः	9.27	103
अशेषरूपसन्दर्शी	9.24	142
अशेषवज्रपर्यङ्को	8.38	114
अशेषविश्वार्थकरो	6.4	45
अष्टाङ्गमार्गनयवित्	9.10	128
अहं चैनां धारयिष्यामि	1.14	14
आकाशधातुपर्यन्त	7.10	76
आत्मवित् परवित्सर्वः	10.13	155
आदिमध्यान्तकल्याणीं	1.11	11
इन्द्रनीलाग्रसच्चीरो	9.8	126
इमां षण्मन्त्रराजानां	4.1	25
इष्टार्थसाधकः परः	9.1	119
उत्तीर्णभवकान्तार	10.7	149
उल्लालयद्भिः स्वकरैः	1.4	4

	परिवर्त/श्लोक	श्लोकसं०
एकक्षणमहाप्राज्ञः	8.41	117
एकक्षणाभिसंबुद्धः	9.23	141
एकपादतलाक्रान्त	9.4	122
एकार्थोऽद्वयधर्मार्थः	9.5	123
एवमध्येष्य गुह्येन्द्रो	1.16	16
ओघोदधिसमुत्तीर्णो	9.18	136
ओं वज्रतीक्ष्णदुःखच्छेद	4.3	27
कुलत्रयधरो मन्त्री	6.24	65
कुलिशेशो वज्रयोनि	7.3	69
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा	1.6	6
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा	1.16	16
कृतोऽस्माकं महानर्थः	14.3	165
कैवल्यज्ञाननिष्ठ्यूतः	6.13	54
क्रोधराट् षण्मुखो भीमः	7.1	67
क्लेशधातुविशुद्धात्मा	9.18	136
क्षेमप्राप्तोऽभयप्राप्तः	6.11	52
गगनाभोगसम्भोगः	8.7	83
गगनोद्भव नमस्तुभ्यं	11.4	161
गगनोद्भवः स्वयम्भूः	6.20	61
गणमुख्यो गणाचार्यो	6.8	49
गम्भीरार्थामुदारार्थां	1.11	11
गम्भीरोदारवैपुल्यो	14.5	167
गुणी गुणज्ञो धर्मज्ञः	8.14	90
घनैकसारो वज्रात्मा	6.20	61
चतुःसत्यनयाकार	9.14	132
जगच्छत्रैकविपुलो	8.29	105
जगतश्चाप्यनाथस्य	14.4	166
जगत्प्रदीपो ज्ञानोल्को	6.21	62
जनकः सर्वबुद्धानां	6.19	60
जिनजिग् वज्रगाम्भीर्यो	8.36	112
जिनो जितारिर्विजयी	6.7	48
ज्ञानकाय वागीश्वर	4.3	27
ज्ञानमूर्तिरहं बुद्धो	4.2	26
ज्ञानवान् सदसज्ज्ञानी	6.16	57

दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री

—डॉ० ठाकुरसेन नेगी—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के दसवें अंक में एशिया, यूरोप एवं अमेरिका के विभिन्न सुदूरवर्ती पुस्तकसंग्रहों में संरक्षित लगभग 153 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित बौद्धस्तोत्र-ग्रन्थों की सूचना दी गई थी। प्रस्तुत अंक में उससे आगे के शेष अन्य स्तोत्र ग्रन्थों की आधार सामग्री की सूचना दी जा रही हैं]

Title	Author	Institution	Ms. No
बालरक्षाकरस्तोत्र Bālarakṣākarastotra		RAK	3/360
बुद्धगीतस्तोत्र Buddhagītastotra		MCBMBLJ	CH 214-N
		SMTUL	258-3
		RAK	3/360
		,,	4/1033
		,,	4/2089
बुद्धगीतिस्तव Buddhagītistava		,,	4/1033
बुद्धभट्टारक बुद्धधर्मसंघस्तोत्र Buddhabhaṭṭāraka Buddha-dharma saṅgha stotra		SMTUL	276-10
		RAK	3 360
		,,	4/1033
		,,	4/1033
बुद्धभट्टारक यशोधरास्तोत्र Buddhabhaṭṭāraka Yaśodharāstotra		SMTUL	164-6
बुद्धरत्नस्तोत्र Buddharatnastotra		RAK	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(29b-3oa)		M. Film CIHTS
,,	,,	Folding Book		NS. 962
Paper		(18, 4-20,5)		
NP	Dev.	(189a)		M. Film CIHTS
,,	N	(51-53)		,, ,,
,,	,,	(97-98)		,, ,,
,,	,,	(34-35)		,, ,,
Paper		(15,3-18,1)		
NP	Dev.	(6b-7b)		,, ,,
,,	N	(28-30)		,, ,,
,,	,,	(38-41)		,, ,,
Paper		(11,14-12,6)		
NP	Dev.	(3a)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
बुद्धस्तव Buddhastava		RAK	3/589
बुद्धस्तोत्र Buddhastotra		,,	1/1696
		,,	Reel No. E. 89/12
		,,	3/360
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
बुद्धहरिहरस्तोत्र Buddhahariharastotra		,,	4/1033
बुद्धनामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र Budddanāmāṣṭottaraśatanāmastotra		,,	1/1697 2/15
बौद्धस्तव Bauddhastava		,,	1/1696
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
बौद्धस्तुतिसंग्रह Bauddhastutisaṁgraha		,,	Reel No. E. 15/17

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(298-299)	Comp.	M. Film CIHTS
,,	,,	(299b)	,,	,, ,,
,,	,,	Folding Book	,,	
,,	Dev.	10	,,	
,,	,,	(4a)		,, ,,
,,	,,	(4a–4b)		,, ,,
,,	,,	(45b)		,, ,,
,,	,,	(45b–46a)		,, ,,
,,	,,	(46a)		,, ,,
,,	,,	(46a)		,, ,,
,,	,,	(46b)		,, ,,
,,	,,	(46b)		,, ,,
,,	,,	(46b–47a)		,, ,,
,,	,,	(47a)		,, ,,
,,	,,	(47a–47b)		,, ,,
,,	,,	(54b–55b)		,, ,,
,,	,,	(83a–83b)		,, ,,
,,	N	(59a)		,, ,,
PL	Maithili	2		M. Film S. S. Uni.
NP	N	Folding Book		
,,	,,			
,,	,,			
,,	,,			
,,	,,			
,,	,,			
,,	Dev.	41	,,	

Title	Author	Institution	Ms. No.
बौद्धस्तोत्र		RAK	1/220
Bauddhastotra		,,	1/124
		,,	Reel No. E. 194/6
		,,	,, E. 356/14
		,,	,, H. 147/3
बौद्धस्तोत्रप्रत्यङ्गिरा		,,	5/305
Bauddhastotrapratyṅgirā			
बौद्धस्तोत्रसंग्रह		,,	1/1606
Bauddhastotrasaṁgraha		,,	3/360
		,,	1/1606
		,,	1/1606
		,,	Reel No. E. 64/1
		,,	,, E. 127/16
		,,	,, E. 258/12
		,,	,, E. 367/6
		,,	,, E. 326/26
		,,	,, H. 381/5
		,,	,, H. 580
		,,	,, E. 7/3
		,,	,, E. 215/1
		,,	,, H. 103/5
		,,	,, H. 162/23
		,,	,, H. 64/5
		,,	,, E. 145/8
		,,	,, E. 255/11
		,,	,, E. 280/20
		IASWR	,, MBB-I-44
		,,	,, MBB-II-50

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	9	Comp.	
,,	,,	Folding Book	,,	
,,	,,	16	Incomp.	
,,	Dev.	2	,,	
,,	N	98	,,	
,,	,,	26	Comp.	
,,	,,	Folding Book	,,	
,,	Dev.	200	,,	M. Film CIHTS
,,	N	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	Dev.	100	,,	
,,	,,	51	,,	
,,	,,	24	,,	
,,	,,	40	,,	
,,	,,	20	,,	
,,	N	35	Incomp.	
,,	,,	16	,,	
,,	,,	79	Comp.	
,,	Dev.	28	,,	
,,	N	16	Incomp.	
,,	,,	32	Comp.	
,,	,,	19	Incomp.	
,,	Dev.	19	Comp.	
,,	N	16	,,	
,,	,,	59	,,	
,,	,,	37	,,	M. Fische CIHTS
,,	,,	46	,,	,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No
बोधिसत्त्वषोडशनामस्तोत्र Bodhisattvaṣoḍaśanāmastotra		,,	3/360
भगवतीहारतीभट्टारिकास्तुति Bhagavatīhāratībhattārikāstuti		MCBMBLJ	CH 274
भद्रकल्पावदानोद्धृतदण्डपाणिकृत नागार्जुनस्तव Bhadrakalpāvadānoddhṛtadaṇḍa-pāṇikṛta Nāgārjunastava.		,,	CA 9-6
भद्रचरीस्तोत्र Bhadracarīstotra		RAK	4/1031
भवरत्नाद्विनिर्गतश्रीहारत्या बालक-रक्षाकरस्तोत्र Bhavaratnādvinirgataśrīhāratyā Bālakarakṣākarastotra		MCBMBLJ	DH 206
भीमराजस्तुति Bhīmarājastuti		RAK	4/2089
भीमराजस्तोत्र Bhīmarājastotra		,,	,,

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(144a)		M. Film CIHTS
,,	N	4 (1b-4b)		
,,	,,	(1a-1b)		
,,	,,	5	Comp.	
,,	,,	56	,,	
,,	,,	54-55		,, ,,
,,	,,	(33–35)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No
भीमसेनस्तव Bhīmasenastava		RAK	4/1033
भीमसेनस्तोत्र Bhīmasenastotra		,,	4/341
		,,	5/341
		,,	4/2089
		,,	3/589
		,,	3/360
		,,	4/1033
		SMTUL	418-165
		RAS	55
भीमसेनोत्पत्तिस्तव Bhīmasenotpattistava		RAK	4/2089
भीमराणेश्वरस्तोत्र Bhīmarāṇeśvarastotra		MCBMBLJ	CH 26-F.
भुजङ्गप्रयातपञ्चकस्तोत्र Bhujaṅgaprayātapañcakastotra		RAK	3/360
भुजङ्गप्रयातस्तोत्र Bhujaṅgaprayātastotra		,,	3/360
भैरवाष्टकस्तोत्र Bhairavāṣṭakastotra		MCBMBLJ	KA 16-F.

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(6-9)		M. Film CIHTS
,,	Rañjanā	14		
,,	,,	—		
,,	N	(56-60)		,, ,,
,,	,,	(184-185)		,, ,,
,,	Dev.	(192b-194a)		,, ,,
,,	N	(43a)	incomp.	,, ,,
Paper		(271a7-273a4)		
,,		(240a)		
NP	,,	(55-56)		,, ,,
,,	,,	Folding Book		Ns. 823
,,	Dev.	(5b-6a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(15a-15b)		,, ,,
,,	N	4		

Title	Author	Institution	Ms. No.
मगरायस्तव Magarāyastava		RAK	4/1033
मङ्गलषोडशस्तुति Maṅgalaṣoḍaśastuti		,,	3/360
मङ्गलस्तवस्तोत्र Maṅgalastavastotra		MCBMBLJ	CH 268
		,,	CH 358
मङ्गलाष्टकस्तोत्र Maṅgalāṣṭakastotra		RAK	Reel No. E. 127/15
		IASWR	WGS-5
मञ्जुघोषस्तोत्र Mañjughoṣastotra		RAK	4/2089
मञ्जुदेवस्तोत्र Mañjudevastotra		,,	3/360
मञ्जुनाथस्तोत्र Mañjunāthastotra		,,	4/2089
मञ्जुबोधस्तोत्र Mañjubodhastotra		,,	4/1033
मञ्जुवज्रस्तोत्र Mañjuvajrastotra		,,	3/360
मञ्जुश्रीनमस्कारस्तोत्र Mañjuśrīnamaskārastotra		,,	4/1033
मञ्जुश्रीस्तोत्र Mañjuśrīstotra		,,	3/360
		,,	,,
		MCBMBLJ	KA 16-P

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(30-31)		M. Film CIHTS
,,	Dev.	(13a-14a)		भद्रकल्पावदान में ,,
,,	N	Folding Book		NS. 1017
,,	,,	28		
,,	,,	10	Comp.	
,,	,,	18	,,	M. Fische CIHTS
,,	,,	(32a)		M. Film CIHTS
,,	Dev.	(2a-3a)		,, ,,
,,	N	(40b)		,, ,,
,,	,,	(42b)		,, ,,
,,	Dev.	(189a)		,, ,,
,,	N	(54-55)		,, ,,
,,	Dev.	(1a,b)		,, ,,
,,	,,	(188a)		,, ,,
,,	,,	13(1b-13b)	Incomp.	Missing F. 4-11.

Title	Author	Institution	Ms. No
मध्यगतस्तोत्र Madhyagatastotra		MCBMBLJ	CH 214-M
मन्त्रानुसारिणीस्तोत्र		,,	KA 16-I
Mantrānusāriṇīstotra		RAK	3/360
महाकालस्तोत्र Mahākālastotra		MCBMBLJ	DH 95
No. 1774 (śa. 269a7–269b6)		RAK	3/360
No. 1775 (śa. 269b6–270b2)		,,	,,
No. 1776 (śa. 270b2–271b4)		,,	,,
Dpal nag-po chen-po-la bstod-pa.			
A. Rtsa-mi Saṅs-rgyas grags-pa			
T. se lo-tsā-ba.		,,	,,
महाप्रतिसरास्तोत्र			
Mahāpratisarāstotra		,,	,,
महाप्रत्यङ्गिरास्तोत्र			
Mahāpratyaṅgirāstotra		,,	,,
महामायूरीस्तोत्र Mahāmāyūrīstotra		,,	,,
		,,	,,
		,,	,,
महासंवरस्तोत्र Mahāsaṁvarastotra		PCHVV	
महासाहस्रप्रमर्दिनीस्तोत्र		,,	,,
Mahāsāhasrapramardinīstotra			
महोग्रताराष्टकस्तोत्र		,,	,,
Mahogratārāṣṭakastotra			

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		
,,	,,	(1b-5b)		Missing F. 2.
,,	Dev.	(27b-28a)		M. Film CIHTS
,,	N	4(10a-13b)		
,,	Dev.	(135a)		,, ,,
,,	,,	(146b)		,, ,,
,,	,,	(185b-186b)		,, ,,
,,	,,	(195a-197a)		,, ,,
,,	,,	(61a)		,, ,,
,,	,,	(27a)		,, ,,
,,	,,	(154b-155a)		,, ,,
,,	,,	(188b)		,, ,,
,,	,,	(197a-198a)		,, ,,
,,	,,	(138b-139b)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
महोग्रतारास्तुति Mahogratārāstuti		RAK	3/360
मायाचक्रस्तोत्र Māyācakrastotra		,,	,,
मुक्तिमालास्तव Muktimālāstava		,,	4/1033
यक्षाष्टकस्तोत्र Yakṣāṣṭakastotra		SMTUL	416-XI
		,,	418-124
		,,	419-III-48
		,,	421-I-7
यक्षेश्वरस्तोत्र Yakṣeśvarastotra		RAK	3/360
यमराजलोकेश्वरप्रार्थनास्तोत्र Yamarājalokeśvaraprārthanā-stotra		SMTUL	341-II
योगाम्बरस्तोत्र Yogāmbarastotra		RAK	3/360
योगिनीस्तोत्र Yoginīstotra		MCBMBLJ	: CH 533
रक्षादेवीस्तोत्र Rakṣādevīstotra		RAK	3/360
रूपस्तव Rūpastava		,,	Reel No. H. 111/6
		CAMBRIDGE	1614

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(222–223)		M. Film CIHTS
,,	,,	(141a–141b)		,, ,,
,,	,,	(248a–b)		,, ,,
,,	,,	(20–21)		,, ,,
Paper	,,	($49a^3$–b^3)		
,,		($222b^5$–$223a^6$)		
,,		($116a^2$–b^5)		
,,		($73a^1$–$74a^2$)		
NP	Dev.	(188b)		,, ,,
Paper		(2,12–5,13)		
NP	,,	(31a)		,, ,,
,,	N	7 (1b–7b)		NS 996.
,,	,,	(28a)		M. Film CIHTS
,,	,,	6	Comp.	
Paper	,,	(6b)		

Title	Author	Institution	Ms. No
लक्ष्मीस्तोत्र Lakṣmīstotra		RAK	3/360
लोकनाथस्तव Lokanāthastava		,,	Reel No. E. 418/9
		,,	1/1607
		,,	4/1033
लोकनाथस्तोत्र Lokanāthastotra		,,	3/360
लोकनाथेश्वरस्तोत्र Lokanātheśvarastotra		,,	,,
लोकपालस्तव Lokapālastava		,,	4/1033
		,,	,,
लोकपालस्तोत्र Lokapālastotra		,,	4/2089
		,,	4/1033
वज्रदेवीस्तोत्र Vajradevīstotra		PCHVV	
वज्रधातुचैत्यस्तोत्र Vajradhātucaityastotra		RAK	3/360
वज्रपाणिस्तोत्र Vajrapāṇistotra		,,	,,

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(142b)		M. Film CIHTS
,,	,,	4	Comp.	
PL	N	5		
NP	,,	(25–26)		,, ,,
,,	Dev.	(23a)		,, ,,
,,	,,	(199a–200)		,, ,,
,,	N	(15–16)		,, ,,
,,	,,	(1–2)		,, ,,
,,	,,	(124–125)		,, ,,
,,	,,	(1–2)		,, ,,
,,	Dev.	(5a)		,, ,,
,,	,,	(133a–133b)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
वज्रमहाकालस्तोत्र		RAK	4/1033
Vajramahākālastotra		,,	4/2089
वज्रयोगिनीविशुद्धिस्तुति		MCBMBLJ	CH 556-B
Vajrayoginīviśuddhistuti			
वज्रयोगिनीस्तुति Vajrayoginīstuti		RAK	3/589
वज्रयोगिनीस्तोत्र Vajrayoginīstotra		,,	4/2089
No. 1587) (Ḥa. 103b¹ - 104a³)		,,	Reel No H. 146/19
No. 1594 (Ḥa. 113a⁵–114a¹)		,,	,, H. 28/15
Rdo-rje rnal-ḥbyor-ma-la-bstod-pa		,,	,, E. 370/20
A. Dipaṁkaraśrījñāna		SMTUL	258-8
T. Rin-chin bzaṅ-po.			
वज्रवाराहीद्वादशस्तुति		CAMBRIDGE	1379-5
Vajravārāhīdvādaśastuti		MCBMBLJ	CH 122-B
		,,	CH. 281-H
		,,	CH. 524
वज्रवाराहीयोगराजस्तोत्र		RAK	4/1035
Vajravārāhīyogarājastotra			
वज्रवाराहीस्तोत्र Vajravārāhīstotra		,,	4/1388
		,,	Reel No E. 356/7
		,,	3/589
			,,
		PCHVV	
		MCBMBLJ	KA 16-V

Material	Script	Folio	Comp /Incomp.	Other Information
NP	N	(27a–b)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(41–42)	incomp.	,, ,,
,,	,,	(35–37)		,, ,,
,,	,,	Folding Book		NS. 689.
,,	,,	(289–290)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(60–62)		,, ,,
,,	,,	11		
,,	,,	25		
,,	,,	6		
Paper	,,	(37,2–40,4)		
,,		(9 Stanzas,ending)		
NP	,,	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	,,	81		NS. 958
PL	Dev.	29	Comp.	
,,	N	Folding Book	,,	
NP	Dev.	3	,,	
,,	N	(209a)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(256a)		,, ,,
,,	,,	20 (1b–20a)		

Title	Author	Institution	Ms. No
वज्रविलासिनीस्तुति Vajravilāsinīstuti		RAK	3/589
वज्रविलासिनीस्तोत्र Vajravilāsinīstotra	विभूतिचन्द्र Vibhūticandra	Prof. J. Upa.	DH 332
वज्रविलासिन्यष्टकस्तोत्र Vajravilāsinyaṣṭakastotra		RAK SMTUL	3/589 420-×-8
वज्रवीरमहाकालस्तवस्तोत्र Vajravīramahākālastavastotra		MCBMBLJ	CH 214–C
वज्रवीरमहाकालस्तोत्र Vajravīramahākālastotra		,, ,, RAK	KA 16–K CH 294 Reel No E. 699/2
वज्रवीरमहाकालाष्टकस्तोत्र Vajravīramahākālāṣṭakastotra		,,	3/360
वज्रवैरोचनीश्वरस्तोत्र Vajravairocanīśvarastotra		RASB	107/9978B
वजवैरोचनीस्तव Vajravairocanīstava		RAK SMTUL	3/589 419 III–79
वज्रवैरोचनीस्तुति Vajrovairocanīstuti		RAK	3/589
वज्रवैरोचनीस्तोत्र Vajravairocanīstotra		SMIUL D–II	420-XIV–2 P. 244
वज्रसत्वस्तोत्र Vajrasattvastotra		RAK ,, ,, ,, ,,	3/360 ,, ,, ,, 4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(209b)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(90a-91a)	Comp.	
,,	,,	(209-210)		,, ,,
IP	,,	(33a-b1)		
NP	,,	Folding Book		NS. 962
,,	,,	3 (1b-3b)		
,,	,,	2 (1a-2b)	Incomp.	
,,	,,	3	comp.	
,,	Dev.	(191a-192b)		M. Film. CIHTS
PL	N	1		
NP	,,	(102a-b)		,, ,,
Paper	,,	(225b³-226a¹)		D. II. P. 244. Appendix A. 82.
NP	,,	(209a-b)		M. Film. CIHTS
Paper	,,	(18a⁴-b³)		Appendix A. 181, D. II. P. 244.
,,	Dev.	(1a-b)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(1b-2a)		,, ,,
,,	,,	(48a)		,, ,,
,,	,,	(48b)		,, ,,
,,	N	(50-51)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No
वनरत्नस्थविरस्तोत्र Vanaratnasthavirastotra		JBORS	XXXIV.9-161
वरूथभीमस्तव Varūthabhīmastava		RAK	4/2089
वरुणदेवतावन्दनास्तवस्तोत्र Varuṇadevatāvandanāstavastotra		SMTUL	276-36
वसुन्धारानामधारणीस्तोत्र Vasundhārānāmadhāraṇīstotra		RAK	3/360
वसुन्धारास्तोत्र Vasundhārāstotra		,,	,,
		,,	1/210
वसुन्धारास्तोत्रादिसंग्रह Vasundhārāstotrādisaṅgraha		,,	1/220
वागीश्वरपूजाविधिस्तोत्र Vāgīśvarapūjāvidhistora		,,	420-XV-1
		,,	3/589
		,,	3/1360
वागीश्वरवन्दनस्तोत्र Vāgīśvaravandanastotra		SMTUL	258-5
		MCBMBLJ	CH 2149-P
वागीश्वर(वर्णन)स्तोत्र Vāgīśvara(Varṇana)stotra		SMTUL	164-28
		RAK	3/360
वाग्वाणीस्तोत्र Vāgvāṇīstotra		,,	3/589
		,,	3/360
वाग्वादिनीस्तोत्र Vāgvādinīstotra		SMTUL	202-96
		,,	418-66

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper	N	4	Comp.	
NP	,,	(113-116)	,,	M. Film. CIHTS
Paper		(108,3-109,3)		
NP	,,	(110b-112a)		,, ,,
,,	,,	(30b-31a)		,, ,,
,,	,,	—		
,,	,,	6	Incomp.	Damage
,,	,,	(54a[1]-56a[4])		
,,	,,	(185-188)		M. Film. CIHTS
,,	Dev.	(108a-110b)		,, ,,
Paper		(25,3-27,3)		
NP		Folding Book		
Paper		(43,13-44,4)		
NP	,,	(198a-199a)		,, ,,
,,	,,	(282a)		,, ,,
,,	,,	(150a-150b)		,, ,,
Paper	,,	(409b[5]-410a[6])		
,,	,,	(142b[4]-143a[3])		

Title	Author	Institution	Ms. No.
विघ्नान्तकस्तव Vighnāntakastava		RAK	3/360
		,,	3/589
		SMTUL	202–5
विघ्नान्तकस्तोत्र Vighnāntakastotra		RAK	3/360
		,,	3/589
		SMTUL	418–64
		,,	420-IX-5
विघ्नेश्वरस्तुति Vighneśvarastuti		RAK	4/2089
विघ्नेश्वरस्तोत्र Vighneśvarastotra		,,	3/360
वुधतिस्तोत्र Vudhatistotra		MCBMBLJ	CH. 122–J
वैरोचनीदेवीस्तवस्तोत्र Vairocanīdevistavastotra		SMTUL	418–80
वैश्रवणकुबेरस्तव Vaiśravaṇakuberastava		,,	418–93
वैश्वानरस्तोत्र Vaiśvānarastotra		RAK	3/360
वृष्टिचिन्तामणिस्तोत्र Vṛṣṭicintāmaṇistotra	जयप्रतापमल्ल Jayapratāpamalla	SMTUL	276–18
शनिद्वादशनामस्तोत्र Śanidvādaśanāmastotra		RAK	3/360
		,,	,,
		,,	3/589
शनिश्चरस्तव Śaniścarastava		SMTUL	196–9
		,,	199–22
		,,	419–III–154
		MCBMBLJ	DH 144

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(139b–140a)		M. Film. CIHTS
,,	N	(215–216)		,, ,,
Paper		(300b¹–b⁶)		
NP	,,	(154b)		,, ,,
,,	,,	(295a)		,, ,,
Paper		(141b¹–7)		
,,		(6a⁴–b⁴)		
NP	,,	(52–53)		,, ,,
,,	Dev.	(188b)		
,,	N	Folding Book		
Paper	,,	(157a¹–5)		
,,	,,	(164b²–4)		
NP	Dev.	(188a)		,, ,,
Paper	,,	(34, 1–41, 4)		
NP	,,	(140a)		,, ,,
,,	,,	(143a–143b)		,, ,,
,,	N	(249a)		,, ,,
Paper	,,	(22b⁴–26b⁵)		
,,	,,	(162b⁵–168a³)		
,,	,,	(298b²–301b²)		
NP	,,	7(1b–7b)		

Title	Author	Institution	Ms. No
शनैश्चरस्तोत्र Śanaiścarastotra		RAK	3/360
शाक्यमुनिचैत्यवन्दनास्तोत्र Śākyamunicaityavandanāstotra		”	4/2089
		SMTUL	276–14
शाक्यमुनिभट्टारकयशोधरास्तोत्र Śākyamunibhaṭṭārakayaśo-dharāstotra		”	”
		MCBMBLJ	CH 100–E
		”	CH 214–I
शाक्यमुनिभट्टारकसुप्रभास्तव Śākyamunibhaṭṭāraka-suprabhāstava		”	CH 21
शाक्यमुनिवन्दनास्तोत्र Śākyamunivandanāstotra		RAK	4/1033
शाक्यमुनिस्तुति Śākyamunistuti		”	3/360
		”	”
शाक्यमुनिस्तोत्र Śākyamunistotra		”	3/360
		”	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(116a–119a)		M. Film. CIHTS
”	N	(44–46)		
Paper	”	(24, 4–27, 3)		” ”
”	”	(85, 2–87, 1)		
NP	”	34(1a–34b)		With Newari-translation.
”	”	Folding Book		
”	Dev.	25		” ”
				” ”
”	N	(18–20)		M. Film. CIHTS
”	Dev.	(6b)		” ”
”	”	(49a)		” ”
”	”	(4b)		” ”
”	N	(96-97)		” ”

Title	Author	Institution	Ms. No
शाक्यसिंहस्तोत्र	ब्रह्म	SMTUL	386-I-1
Śākyasiṁhastotra	Brahm	RAK	3/360
	यशोधरा	RAS	31-IV
	Yaśodharā	RAK	3/360
	शङ्कर Śaṅkara	,,	3/360
	सुरपति Surapati	,,	3/360
	महादेव Mahādeva	SMTUL	386-I-3
	देवराज Devarāja	RAS	31-I
	आदित्यादिनवग्रह	RAK	3/360
	Ādityādinavagraha	SMTUL	386-I-5
		RAS	31-II
		RAK	3/360
	रुचिरकेतुबोधिसत्त्व Ruciraketubodhisattva	,,	3/360
	वज्रघण्टाधर Vajraghaṇṭādhara	,,	3/360
	विष्णु Viṣṇu	SMTUL	386-I-2
	स्वरवैद्य Svaravaidya	RAS	31-III
शारदास्तव Śāradāstava		RAK	3/360
		SMTUL	164-33
शारदा(स्तव)स्तोत्र		RAK	4/2089
Śārada(stava)stotra		MCBMBLJ	CH 200-C
		,,	KA 16-D
		SMTUL	164-32
		,,	258-7
		,,	276-29
		CAMBRIDGE	1379-8

Material	Script	Folio	Comp /Incomp.	Other Information
Paper		(1a¹–4b²)		M. Film. CIHTS
NP	Dev.	(14a–14b)		,, ,,
,,	,,	(12a–13a)		,, ,,
,,	,,	(15b–16b)		,, ,,
,,	,,	(16b–18a)		,, ,,
Paper		(5b³–6b³)		
,,	,,	(18a–18b)		,, ,,
,,	,,	(8a³–9a³)		
NF	,,	(47b–48a)		,, ,,
,,	,,	(54a–54b)		,, ,,
,,	,,	(55b–56a)		,, ,,
Paper		(4b³–5b³)		
NP	,,	(194a–195a)		,, ,,
Paper		(46,18–47,13)		
NP		(98–100)		,, ,,
,,	N	Folding Book		
,,	,,	2 (1a–2b)		
Paper		(46, 4–18)		
,,		(33,3–37,1)		
,,		(93,2–95,1)		
,,		(7 Stanzas, ending)		

Title	Author	Institution	Ms. No.
शिवरूपभीमसेनस्तोत्र Śivarūpabhīmasenastotra		SMTUL	276-39
शीतवतीस्तुति Śītavatīstuti		RAK	3/360
श्रीघनस्तोत्र Śrīghanastotra	इन्द्र Indra	SMTUL	386-I-4
षड्गतिस्तोत्र Ṣaḍgatistotra		RAK	3/360
		CAMBRIDGE	1614
षट्पारमितास्तोत्र Ṣaṭpārāmitāstotra		RAK	4/2089
		MCBMBLJ	CH 26-H
षड्भुजमहाकालसाधनस्तोत्र Ṣaḍbhujamahākālasādhanastotra		RAK	3/360
षडक्षरस्तव Ṣaḍakṣarastava		,,	3/589
षोडशयोगिनीस्तव Ṣoḍaśayoginīstava		,,	,,
संकटादेवीस्तवराज Saṁkaṭādevīstavarāja		SMTUL	199-17

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper		(119,5–125,1)		
NP	Dev.	(27b)		M. Film. CIHTS
Paper		(6b³-8a³)		
NP	,,	(25b–26a)		
Paper		(9a)		,, ,,
NP	N	(49–50)		,, ,,
,,	,,	Folding Book		NS 823
,,	Dev.	(147a–147b)		M. Film. CIHTS
,,	N	(216a–b)		,, ,,
,,	,,	(253–254)		,, ,,
,,		(135a²–137b)		

Title	Author	Institution	Ms. No
सप्तबुद्धस्तव Saptabuddhastava		RAK	4/2089
		,,	Reel No. H. 191-4
		,,	3/360
		,,	4/1489
		SMTUL	201-23-1
		,,	276-13
		,,	416-IX
		,,	418-6
		,,	420-V-2
		MCBMBLJ	CH. 534
		,,	DH. 227
		CAMBRIDGE	899 V
		RAS	30 II
		,,	55
सप्तविधानुत्तरस्तोत्र Saptavidhānuttarastotra		RAK	3/360
		MCBMBLJ	CA II-1
सप्ताक्षरस्तोत्र (लोकनाथभट्टारकस्य) Saptākṣarastotra (Lokanāthabhaṭṭārakasya)		SMTUL	276-12
		CAMBRIDGE	1614
समन्तभद्रस्तोत्र Samantabhadrastotra		RAK	3/360
सरस्वतीशतनामस्तोत्र Sarasvatīśatanāmastotra		SMTUL	418-81
सरस्वतीस्तव Sarasvatīstava		RAK	3/589

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(42–44)		M. Film. CIHTS
,,	N	4	Comp.	
,,	Dev.	(190a–191a)		,, ,,
,,	N	—		
Paper		($85b^{2}$–$86b^{5}$)		
,,		(20,5–24,4)		
,,		($47b^{4}$–$48b^{3}$)		
,,		($51a^{2}$–$52b^{2}$)		
,,		($5a^{1}$–$6a^{6}$)		
NP	,,	(1b–11)		Missing F. 8, 12.
,,	,,	Folding Book		
Paper		,,		Wilson's translation, Asiatic Researches, X VI, P. 453.
,,		(12a-b)		
,		(63a)		
NP	Dev.	(23b-24b)		M. Film. CIHTS
,,	N	46		
Paper		(19,2–20,5)		
,,		(7b)		
NP	Dev.	(133a)		,, ,,
Paper		($157a^{5}$–$158a^{2}$)		
NP	N	(282–283)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No
सरस्वतीस्तोत्र Sarasvatīstotra		RAK	3/360
		,,	3/360
		,,	3/360
		,,	3/589
		SMTUL	202–98
		,,	418 82
सर्वनिवरणाभिष्कम्भिस्तोत्र Sarvanivaraṇābhiṣkaṁbhistotra		RAK	3/360
संघरत्नस्तोत्र Saṅgharatnastotra		,,	3/360
साहस्रप्रमर्दिनीस्तोत्र Sāhasrapramardinīstotra		,,	3/360
सूर्यद्वादशनामधारणीस्तोत्र Sūryadvādaśanāmadhāraṇīstotra		,,	3/360
सूर्यशतक Sūryaśataka		,,	3/360
		,,	3/589
		IASWR	MBB–II–116
सूर्यस्तोत्र Sūryastotra		MCBMBLJ	CH. 122–4
		SMTUL	418–146

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(4a)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(142b)		,, ,,
,,	,,	(150b–151b)		,, ,,
,,	N	(256a–b)		,, ,,
Paper		($410b^3$–$411a^6$)		
,,		($158a^2$-b^5)		
,,	Dev.	(133b–134a)		,, ,,
,,	,,	(3b)		,, ,,
,,	,,	(26b–27a)		,, ,,
,,	,,	(135a–135b)		,, ,,
,,	,,	(119a–132b)		,, ,,
,,	N	(161–169)		,, ,,
NP	,,	116		
,,	,,	Folding Book ($261b^7$–$262b^3$)		

Title	Author	Institution	Ms. No
स्रग्धरास्तोत्र		RAK	4/884
Sragdharāstotra		,,	4/338
		,,	5/2320
No. 1690 (Śa. 38b^{2}-42a^{5})		,,	4/22
Phreṅ-ba ḥdsin-paḥi bstod-pa		,,	3/604
A. Thams-Cad mkhyen-paḥi bśes		,,	4/70
gñen.		,,	5/134
		,,	Reel No H. 387/7
No. 1691 (Śa 42a^{5}-46a^{1})		,,	,, ,, E. 229/6
Me-tog Phreṅ ḥdsin-gyi		,,	,, ,, E. 874/8
bstod-pa.		,,	,, ,, E. 259/10
A. same above.		,,	,, ,, E. 259/24
		,,	,, E. 366/7
No. 1692 (Śa 46b^{2}-49b^{6})		,,	4/2089
Ḥphags-ma sgrol-maḥi me-tog		,,	3/589
Phreṅ-ba ḥdsin-pahi bstod-		,,	3/360
pa.		MCBMBLJ	CH 8
A. Same.		,,	CH 123
		,,	CH 58
		,,	CH 210-A
		,,	CH 335
		,,	CH 400
		,,	DH 55
		,,	DH 113
		,,	DH 215
		,,	DH 299
		JBORS	XXIII. 1-272
		SMTUL	23-II
		,,	201-16
		,,	393, 394,
		,,	395, 396
		,,	418-141
		CAMBRIDGE	1104-II
		,,	1272
		,,	1362
		RAS	30-I

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	12	Comp.	
,,	,,	Folding Book		
,,	,,	23		
,,	,,	20		
,,	,,	—		
PL	Bhujimol	8		
,,	N	9		
NP	Dev.	7		
,,	N	49		
,,	,,	8		
,,	,,	10		
,,	,,	40		
,,	,,	52		
,,	,,	(24–32)		M. Film. CIHTS
,,	,,	(158–161)		,, ,,
,,	,,	(37b–42b)		,, ,,
,,	,,	28 (1b–28b)		With Newari translation.
,,	,,	36 (1b–36b)		,, ,,
,,	,,	43 (1b–43a)		
,,	,,	81 (1b–81b)		
,,	,,	40 (1b–40a)		
,,	,,	9 (2–33)	Incomp.	Ns. 973. missing F. 1, 3, 6–8, 11, 13–26, 28–30, 33.
,,	,,	8 (1a–8b)	Comp.	
,,	,,	21 (2–22a)	Incomp.	Missing F. 1.
,,	,,	3a (1–39)	,,	
,,	,,	88 (1b–87b)	,,	
,,	Māgadhi	9	Comp.	
Paper	N	($10b^{6}$–$16b^{4}$)		
,,		($54b^{4}$–$60b^{4}$)		
,,		—		With Vernacular translation.
,,		—		,, ,, Commentary.
,,		($253a^{6}$–$257b^{7}$)		
,,		25		XVIII—XIX Cent.
,,		25		A.D. 1784. With Vernacular Comment.
,,		18		With Vernacular Commentary.
,,		10		
,,		39		With Tīkā

Title	Author	Institution	Ms. No.
स्रग्धरापञ्चकस्तोत्र		RAS	29
Sragdharāpañcakastotra		RAK	3/360
स्वकरास्तव Svakarāstava		,,	4/1033
स्वयम्भूचैत्यस्तोत्र		SMTUL	276-15
Svayambhūcaityastotra			
स्वयम्भूधर्मधातुचैत्यावदानस्तोत्र		MCBMBLJ	CH 214-K
Svayambhūdharmadhātu-Caityāvadānastotra			
स्वयम्भूधर्मधातुचैत्यवन्दनास्तोत्र		SMTUL	258–13
Svayambhūdharmadhātucaityavandanāstotra			
स्वयम्भूनाथस्तव		,,	164–22
Svayambhūnāthastava			
स्वयम्भूबुद्धगीतस्तोत्र		MCBMBLJ	CH. 214-S
Svayambhūbuddhagītastotra			
स्वयम्भूभट्टारकस्तोत्र	जयप्रतापमल्लदेव	,,	CH 215-A
Svayambhūbhaṭṭāraka-	Jayapratāpa-	SMTUL	164-7
stotra	malladeva	,,	276–37
		RAK	4/1033
स्वयम्भूभट्टारकश्रीविश्वबुद्धकृतस्तोत्र		MCBMBLJ	CA 74-7
Svayambhūbhāṭṭāraka-Śrīviśvabuddhakṛtastotra			
स्वयम्भूस्तव Svayambhūstava		RAK	3/360
		,,	,,
		,,	,,

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(5a-5b)		M. Film. CIHTS.
,,	,,	(22–23)		,, ,,
Paper		(27,3-29,5)		
NP	N	Folding Book		NS. 962
Paper	,,	(50,4-53,4)		
,,		(38,8-17)		
NP		Folding Book		NS. 962
,,		,,		,,
Paper	,,	(12,6-14,11)		
,,	,,	(109,3-115,5)		
NP	,,	(44a)		M. Film. CIHTS
,,	,,	3 (1b-3b)		,, ,,
,,	Dev.	(8a-8b)		,, ,,
,,	,,	(9a-9b)		,, ,,
,,	,,	(9b-10b)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
स्वयम्भूस्तुति Svayambhūstuti		RAK	3/360
स्वयम्भूस्तोत्र Svayambhūstotra		,,	4/2089
स्वस्तिवाक्यमङ्गलस्तोत्र Svastivākyamaṅgalastotra		MCBMBLJ	A-134
हरसिद्धिस्तोत्र Harasiddhistotra		RAK	3/589
हारतीस्तुति Hāratīstuti		MCBMBLJ	A 160
हारतीस्तोत्र Hāratīstotra		RAK	3/360
		,,	3/360
		,,	Reel No. E. 596/1
		MCBMBLJ	KA 16-X
हेरुकचतुर्विंशतिस्तोत्र Herukacaturviṁśatistotra		,,	CH. 148-D
हेरुकविशुद्धिस्तोत्र Herukaviśudhistotra		RAK	4/1033
		PCHVV	,,
हेरुकयोगाम्बरकालचक्रहेवज्रस्तोत्र Herukayogāmbarakālacakra-hevajrastotra		SMTUL	202-3
हेरुकस्तुति Herukastuti	कण्हपाद Kaṇhapāda	JBORS	XXTI-25-143
हेवज्रयोगिनीस्तुति Hevajrayoginīstuti		,,	XXVI-96-144
हेवज्रस्तुति Hevajrastuti	समाधिवज्र Samādhivajra	,,	XXVI-23-141
		,,	XXVI-22-140
हेवज्रस्तोत्र Hevajrastotra		MCBMBLJ	A 91-2

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev	(10b)		M. Film. CIHTS
,,	N	108-110		,, ,,
,,	Dev.	13		,, ,,
,,	N	(255a)		,, ,,
,,	,,	6		,, ,,
,,	Dev.	(30b)		,, ,,
,,	,,	(188b)		,, ,,
,,	N	6	Comp.	,, ,,
,,	,,	5		,, ,,
,,	,,	Folding Book		,, ,,
,,	,,	—		,, ,,
,,	,,	—		,, ,,
Paper	,,	($322a^5$–b^2)		
,,	Kuṭila	231	Comp.	
,,	,,	235	,,	
,,	,,	230	,,	
,,	,,	228	,,	
NP	N	8(11b–18b)		

नरोपा की अन्तराभव योगसाधना

—डॉ० ठाकुरसेन नेगी—

['धीः' के पिछले चार अंकों में नरोपा की छः योग साधनाओं में से चार का वर्णन किया जा चुका है। प्रस्तुत अंक में पंचम अन्तराभव योग का वर्णन किया जा रहा है। संक्षेप में अन्तराभव योग को त्रिकाय (तीन कायों) के रूप में अनुभव किया जा सकता है—

1. मृत्यु के समय में धर्मकाय का,
2. अन्तराभव के समय में संभोगकाय का,
3. पुनर्जन्म ग्रहण करने के समय में निर्माणकाय का।

इस प्रकार यह एक मार्ग है, जो बुद्ध के त्रिकाय मार्ग की उपलब्धि की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।]

नरोपा की छः योग साधनाओं (विधियों) में पांचवीं विधि अन्तराभव अवस्था के सिद्धान्त से सम्बद्ध है। दो जन्मों के बीच की अन्तराभव अवस्था के लिये भोट भाषा में 'बर्दो थोडोल' (पुनर्भव, अन्तराभव के पूर्व श्रवण द्वारा जीवन्मुक्ति) का उपदेश प्रचलित है। भोट भाषा में यह कई पोथियों में सन्निहित है, जिनका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में "दि टिबेटन बुक ऑफ डेड" में प्राप्य है। उक्त उपदेशों में जीवन की कल्पना एक स्वप्नमयी निरन्तरता के रूप में की गई है, जिसमें मरण और जन्म के बीच केवल अन्तराभव की स्थिति होती है।

'बर्दो थोडोल' में बार-बार समझाया गया है कि मरते समय केवल योगी ही, जिसे प्रभास्वर प्रकाश की अनुभूति प्राप्त होती है, अन्तराभव (पुनर्भव) के समय भी अपनी अध्यात्म चेतना का संवहन करता है। सामान्य रूप से अध्यात्म चेतना नया जन्म धारण करने के समय प्रायः क्षीण हो गई रहती है। जितनी देर तक अन्तराभव अवस्था में प्राणी को रहना होगा, वह उसके किये गये कर्म पर निर्भर करता है, जिसका सुविस्तर वर्णन आगे यथास्थान किया जायगा। उसी के अनुसार वह माया से अभिभूत रहता है। समय आने पर वह माता के गर्भ में प्रवेश कर नया जीवन आरम्भ करता है। उस समय भी वह अपनी वासनाओं का दास होता है, क्योंकि वासनाएँ अज्ञानमयी होती हैं।

इसके विपरीत यदि किसी योगी ने अपने जीवनकाल में इस अन्तराभव योग में कुशलता प्राप्त की होती है, तो (वह) प्राण छोड़ते समय इच्छाशक्ति के प्रबल आवेग के साथ समाधि की उच्चतम स्थिति में रहकर बोधि के साथ पारमार्थिक सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। अबोध सत्त्वों (प्राणियों) के विपरीत वह अचेतनावस्था की मूर्छा का अतिक्रमण कर अपने पार्थिव

शरीर को पारमार्थिक चेतना से सर्वथा असम्पृक्त कर लेता है। कोई योगी साधारण ढंग से नहीं मरता, जब तक कि कोई दुःसंयोग न उपस्थित हो, जिसमें उसकी अचानक हत्या कर दी जाय।

योगी का शरीर धारण करना और उसे छोड़ना परिधान का धारण करना और त्यागना मात्र होता है, जिस तरह कोई अपनी इच्छा से परिधान धारण कर ले अथवा उसे उतार कर रख दे। योगी के चित्त में चेतना का आह्लाद और बोधि का निवास होता है। बोधिसत्त्व जीवन के रहस्य को समझकर ही किसी पावन क्षण में पुनर्भव-अन्तराभव को अंगीकार करते हैं और योग में दीक्षा लेने वाले साधकों की चतुर्थ कोटि में जन्म ग्रहण करने के लिये माता के गर्भ में जानबूझ कर प्रवेश करते हैं। माता गर्भ धारण करती है। उसकी बोधि-सत्त्व की गर्भावस्था के कालपर्यन्त अपनी चेतनता बनी रहती हैं और चैतन्य रूप में ही वे जन्म ग्रहण करते हैं[1], यह बुद्धवचन है।

धर्म का लक्ष्य जीव (सत्त्व) को उस महाशक्ति से संपुष्ट करना है, जिसके द्वारा वह इच्छाशक्ति से माया की समस्त अवस्थाओं को लांघता हुआ चेतना की अप्रतिहत निरन्तरता को बनाये रखकर अपने सूक्ष्म (आणविक) चित्त (मन) Microcosmicmind को ब्रह्माण्ड चित्त (मन) Macrocosmicmind में मिला दें। माया का जयी जीवन और मृत्यु का विजेता होता है। वह अन्धकार में प्रकाश तुल्य है, भ्रान्त का मार्गदर्शक है तथा इन्द्रियों के वशीभूत रहने वालों का त्राता है। महायान की लोकोत्तर भाषा में संसार एवं निर्वाण के बीच कोई भेद नहीं है। वह अनियन्त्रित वनराज की तरह पर्वत श्रेणियों में विचरण करता है। चार योनियों में उसका अवतरण उसकी इच्छा से ही होता है[2]।

भोट देश के गुरुओं की तान्त्रिक भाषा में मरण-प्रक्रिया की तुलना तेल के अभाव में बुझते हुए दीपक से की जाती है तथा उसी प्रकार के प्रतीकों से बाह्यजगत् में घट रही घटनाओं के अभिप्राय जाने जाते हैं। जैसे—विलक्षण प्रकाश, ध्वनियाँ, नाना प्रकार के रूप, जो अन्तराभव (पुनर्भव) की अवस्थाओं में प्रविष्ट होने वाले व्यक्ति के सामने आते हैं।

उक्त प्रक्रिया की बुद्धिपरक परीक्षा से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीव (सत्त्व) के जीवन में स्थानान्तरण के समय जो भी चमत्कारिक घटनाएँ दिखाई देती हैं, वह प्रपञ्च मात्र हैं। जैसे भाव हमारे चित्त (मन) की तरंगों में उदित होते हैं, उन्हीं का मोहात्मक रूप ग्रहण कर वे माध्यम के सन्निकट रूपायित होते हैं। विचारणीय बात यह है कि चित्त (मन) के अन्तःस्थल में जो संवेग मरण का आतंक लेकर प्रस्तुत होते हैं, उन्हीं का बिम्ब मस्तिष्क पर पड़ता है।

---

1. द्रष्टव्य–पालि विनय में आये 'दीघनिकाय' का संगीति सुत्त।
2. द्रष्टव्य–जेत्सुन–कह्बुम तिब्बती संस्करण।

अन्तराभव के समय बिम्ब भी उसी तरह मस्तिष्क पर छा जाते हैं। यहाँ नरोपा जी की जिस पुस्तक से ऊपर के विचार लिये गये हैं, उसकी व्याख्या के रूप में तिब्बती वाङ्मय में अनेकों पुस्तकें प्राप्य हैं, जो मरण तथा मरणोपरान्त अन्तराभव-पुनर्भव की प्रक्रियाओं को व्याख्यायित करती हैं, अर्थात् गर्भाधान से लेकर गर्भावस्था तक की सम्पूर्ण विवेचना उन पुस्तकों में पाई जाती है।

अन्तराभव योग का शिक्षण

अन्तराभव योग की साधना में लगे साधक को पहले अन्तराभव के मौलिक सिद्धान्तों को समझना चाहिये। इसकी सूचना अन्य स्रोतों से भी मिल सकती है, विभिन्न सूत्रों और तन्त्रों की सहायता से इस विषय पर व्यापक अध्ययन किया जा सकता है। हम यहाँ संक्षेप में अन्तराभव की चार स्थितियों पर विचार करेंगे—

1. जब रूपस्कन्ध का आकार निलीन (परिवर्तित) होने लगता है, तो कमजोर साधक क्षरण, अर्थात् थकावट की स्थिति में आ जाता है। जब पृथिवी तत्त्व निलीन होते हैं, तो उसका शरीर सूखने लगता है। जब प्रकाश के अंश निलीन होते हैं, तो साधक अपने अक्षिपटल को घुमा नहीं पाता, जिससे वह स्पष्ट देख नहीं पाता और जब उसकी महाप्रज्ञा निलीन होती है, तो साधक का चित्त (मन) बहुत धुँधला और मतिमन्द (बुद्धिहीन) हो जाता है।

2. जब वेदनास्कन्ध निलीन होता है, तो साधक का शरीर ढीला (आलसी, निष्क्रिय) और सुन्न (जडीभूत) हो जाता है, जब उसका जल तत्त्व समाप्त होता है, तो शरीर के भीतर का स्राव बन्द हो जाता है। जब उसके श्रोत्र (सुनने के) अंग शिथिल हो जाते हैं, तो साधक सुन नहीं पाता और जब विज्ञान या विज्ञानस्कन्ध की एकता का बोध समाप्त होता है, तो साधक हर्ष और दुःख में भेद नहीं कर पाता।

3 जब संज्ञास्कन्ध का बोध निलीन होने लगता है, तो साधक बाह्य वस्तुओं को देख नहीं पाता, अर्थात् जब उसका अग्नि तत्त्व निलीन होने लगता है, तो उसकी पाचन शक्ति समाप्त होने लगती है। जब नासिका की घ्राण शक्ति (सूँघने की शक्ति) खतम होने लगती है, तो उसका ऊर्ध्व प्राण मन्द गति से, अर्थात् धीमे धीमे चलता है और अनियमित हो जाता है। जब गन्ध-शक्ति निलीन होने लगती है, तो साधक गन्धों के भेद को भूल जाता है और जब विज्ञान का अनुभव समाप्त होता है, तो मरने वाला व्यक्ति अपने सामने खड़े हुए सम्बन्धियों तक को नहीं पहचान पाता।

4. जब गति-शक्ति क्षीण हो जाती है, तो साधक कुछ भी नहीं कर पाता और जब प्राण का क्षय होने लगता है, तो उसके दशविध प्राण वहीं लौट जाते हैं, जहाँ से वे आये हैं और जब स्वाद की संवेदना समाप्त हो जाती है, तो उसकी जिह्वा छोटी और सघन हो जाती है। इस

प्रकार जब स्वादेन्द्रिय निलीन होती है, तो साधक विभिन्न प्रकार के रसों के स्वाद को नहीं पहचान पाता और जब विज्ञान की क्रियात्मकता समाप्त हो जाती है, तब साधक न तो काम कर सकता है और न इच्छा।

बौद्ध सूत्र और तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार मृत्यु से सम्बद्ध सूचनाएँ

1. जब पृथिवी तत्त्व जल में अन्तर्भूत हो जाता है, तो साधक अपना शरीर मोड़ नहीं पाता, जिससे वह समझने लगता है कि उसकी सभी प्रकार की सहायताएँ समाप्त हो रही हैं तथा अब वह भी समाप्त (नष्ट) होने वाला है। वह चिल्लाना चाहता है कि 'कृपया उसे खड़ा होने के लिये सहायता कीजिये, यह उसकी मृत्यु का एक बाहरी लक्षण है। भीतरी लक्षण के रूप में चेतनाएं बादल की भांति आवाज देती हुई दिखाई देती हैं।

2. जब जल तत्त्व अग्नि में मिलने लगता है, तो बाहरी लक्षण के रूप में उसके सभी प्रकार के स्राव सूख जाते हैं तथा भीतरी लक्षण के रूप में चेतनाएँ अपने को माया (अर्थात् मृगमरीचिका) के रूप में बदलती हुई क्रोध के तैंतीस भेदक विचारों में अन्तर्लीन होती हुई दिखाई देती हैं।

3. जब अग्नि तत्त्व प्राण में निलीन होता है. तो शरीर की गर्मी में भयानक कमी होती है, जिसके कारण उसकी अंगुलियाँ और अंगूठे सुन्न और ठंडे पड़ जाते हैं। यह उसे बाहरी लक्षण के रूप में ज्ञात होने लगता है, चेतना धुँधली चिनगारी की भाँति दिखाई देती हैं तथा 40 प्रकार के काय के विचार निलीन हो जाते हैं, यह उसके आन्तरिक लक्षण हैं।

4 जब प्राण चेतना में लीन हो जाता है, तो मरते हुए व्यक्ति का उच्छ्वास (बाहरी श्वास) बहुत लम्बा (झाड़ीदार) होता है और प्रश्वास (भीतरी श्वास) बहुत कम देर टिकता है। यह उसके बाहरी लक्षण हैं और भीतरी लक्षण दीपशिखा की भाँति दिखाई देता है तथा सात प्रकार के अज्ञान के विचार निलीन हो जाते हैं।

इस प्रकार इस ग्रन्थ के आधार पर ये लक्षण साधक को मृत्यु के समय एक के बाद एक दिखाई देने लगते हैं, या एकाएक दिखाई देने लगते हैं। यह उसके व्यक्तिगत कृत्यों पर निर्भर करता है।

जब उसके सूक्ष्म तत्त्व अन्तर्लीन होते हैं, तो मरने वाला व्यक्ति निम्नलिखित स्थिति का अनुभव करता है—

1. जब चेतना प्रकाश के प्रकटीकरण के रूप में अन्तर्लीन होती है, तो साधक बादल-विहीन आकाश में चन्द्रमा की भाँति उसे देखता है।

2. जब प्रकाश का प्राकट्य प्रकाश के संवर्धन (वृद्धि) में लीन होता है, तो वह (साधक) प्रकाश को लाल-नीले रंगों की भाँति प्रातःकालीन रेखा के सदृश देखता है।

3. जब वृद्धिगत प्रकाश पूर्ण प्रकाश में अन्तर्लीन होता है, तो साधक पूर्ण अन्धेरे का अनुभव करता है तथा चेतनाहीन हो जाता है।

4. यह अचेतन अवस्था पुनः प्रकाश में लीन होती है और पारदर्शी शून्यता के सदृश प्रातःकालीन बादलविहीन आकाश में सभी सूक्ष्म मल पूर्व तीन अवस्थाओं को पार करते हुए दिखाई देते हैं, यही वास्तविक मृत्यु का प्रकाश, अर्थात् सहज प्रकाश है।

इस प्रकार जब विभिन्न प्रकार के तत्त्व एक दूसरे में अन्तर्लीन हो जाते हैं, तो प्राण तत्त्व अन्त में चेतना में, अर्थात् हृदयचक्र में निलीन होता है, श्वेत बिन्दु शीर्षचक्र से नीचे उतरता है, रक्त बिन्दु नाभिचक्र से ऊपर उठता है और दोनों (शुक्र-शोणित) बिन्दु हृदयचक्र में मिलते हैं। जब श्वेत (शुक्र) और रक्त (शोणित) बिन्दु पूर्ण रूप से मिल जाते हैं तो मृत्यु का प्रकाश दिखाई देता है। षड्जाति गति आदि के प्रत्येक सत्त्व (प्राणी) मृत्यु के प्रकाश को अपने जीवन के अन्त में देखते हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश उसे पहचान या पकड़ नहीं पाते।

अन्तराभव का उदय

मृत्यु के प्रकाश से पूर्णता, वृद्धिगतता और प्राकट्य क्रमशः पैदा होते हैं। जब प्रसुप्ति (तन्द्रावस्था) में प्राण गतिशील होता है, तो पूर्णता का प्रकाश उदित होता है और तुरन्त थोड़ी देर के बाद वृद्धिगत प्रकाश और प्राकट्य का प्रकाश अनुगत होता है। तब अस्सी प्रकार के विभेदक विचार पैदा होंगे। इसके परिणामस्वरूप सभी मायिक अन्तराभव के परिणाम दिखाई देंगे।

यहाँ एक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि अन्तराभव में रहने वाले सत्त्व के शरीर और मुख की कैसी आकृति (दृष्टि) होती है? असंग बन्धुओं के अनुसार सत्त्व अगले जन्म के अनुसार रूप धारण करता है, किन्तु अन्य लोगों के अनुसार वह पूर्व जन्म के कर्मानुसार रूप (जन्म) धारण करता है। अभिधर्मकोश में कहा भी है—

एकाक्षेपादसावैष्यत्पूर्वकालभवाकृतिः।
स पुनर्मरणात् पूर्व उपपत्तिक्षणात्परः (3.13)

जिस कर्म से पूर्वकालभव, अर्थात् प्रतिसन्धि के पश्चात् अनागत गति का सत्त्व आक्षिप्त होता है, उसी कर्म से अन्तराभव भी आक्षिप्त होता है। अतः अन्तराभव की आकृति पूर्वकालभव की आकृति के तुल्य होती है। जो कर्म नरकादि गति को आक्षिप्त करता है, वही कर्म तत्प्रापक अन्तराभव को भी आक्षिप्त करता है। अतः अन्तराभव की आकृति उस गति के अनागत पूर्वकालभव की सी होती है, जिसके वह अभिमुख है। अन्तराभव का प्रमाण पाँच या छः वर्ष के शिशु का होता है, किन्तु उसकी इन्द्रियाँ व्यक्त होती हैं। बोधिसत्त्व का [1]अन्तराभव पूर्ण यौवन को प्राप्त बोधिसत्त्व के सदृश होता है। वह लक्षण और अनुव्यंजनों के सहित होता है।

1. "पूर्णयून इव बोधिसत्त्वस्यान्तराभवः सलक्षणानुव्यञ्जनश्च" (अभि०, पृ० 290 टि०)।

गुरूपदेश क्रमानुसार अन्तराभव के प्राथमिक समय में अन्तराभविक सत्त्व (जीव) के शरीर (देह) की आकृति पूर्वजन्म के सत्त्व की भाँति होती है और फिर वह धीरे-धीरे धूमिल होती है। इस प्रकार अन्तराभव की अगली अवस्था में वह आने वाले अगले जन्म की गति को प्राप्त करता है। यह सिद्धान्त केवल तर्कसंगत ही नहीं, बल्कि शास्त्रानुमोदित भी है। इस विषय में अभिधर्मकोश में कहा भी है—

मृत्यूपपत्तिभवयोरन्तरा भवतीति यः।
गम्यदेशानुपेतत्वान्नोपपन्नोऽन्तराभवः ॥ (3.10)

अर्थात् अन्तराभव मरणभव और उपपत्तिभव के बीच का अन्तराल है। गम्य देश में प्राप्त न होने से हम नहीं कह सकते कि यह उपपन्न है। मरणभव, अर्थात् मरणकाल के पञ्च-स्कन्ध और उपपत्तिभव अर्थात् उपपत्तिकाल के पञ्चस्कन्ध के अन्तराल में एकभव, एककाय एक पञ्चस्कन्ध होता है, जो उपपत्ति देश को जाता है। यह भव दो गतियों के अन्तराल में होता है, अतः इसे अन्तराभव कहते हैं।

योगाचारभूमिशास्त्र में कहा है—"अन्तराभव इत्यप्युच्यते, मरणभवोत्पत्तिभवयोरन्तराले प्रादुर्भावात्। गन्धर्व इत्युच्यते, गन्धेन गमनाद् गन्धेन पुष्टितश्च। मनोमय इत्युच्यते, तन्निश्रित्य मनस उपपत्त्यायतनगमनतया, शरीरगत्या च पुनर्नालम्बनगत्या। अभिनिर्वृत्तिरप्युच्यते उपपत्तेराभिमुख्येन निवर्तनतया" इति।

संवरोदयतन्त्र में कहा है—

मायोपमसमाधिं च न प्रजानन्ति मानुषाः।
अनादिकालिकक्लेशवासनाप्रबलीकृताः ॥
तेन पुराकृतं कर्म च्युत्युत्पत्ति संभवेत्।
सामग्रीं न लभते तावत् सप्ताहमन्तराभवे (तिष्ठति) ॥
अन्तराभवसत्त्वस्य देशान्तरगामिवत्।
कथञ्चित् कर्मसूत्रेण षड्गतिश्च प्रजायते ॥ (2.11-13)

इस प्रकार बहुत से सूत्रों और तन्त्रों में अन्तराभव दशा में संस्कारकाय की भाँति पूर्व जन्म के अस्तित्व को माना गया है।

कालचक्रतन्त्र की बृहट्टीका विमलप्रभा भी इससे सहमत है। यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाय, यदि हम एक स्वप्न का उदाहरण लें। स्वप्न में बराबर सोचने के कारण हम अपनी आकृति (आकार) और शरीर को छोड़ नहीं पाते। ठीक इसी प्रतीक की भाँति संस्कारित विचार पूर्व अन्तराभव के स्वरूप को रखे रहते हैं और केवल अन्तिम क्षण में जब पूर्व जन्म के सांस्कारिक विचार धूमिल होते हैं, तो एक नया शारीरिक रूप आने वाले सत्त्व का दिखाई देता है।

अन्तराभविक सत्त्व सभी अंगों से युक्त होता है और बिना किसी बाधा के सर्वत्र चल सकता है। केवल उस स्थान को छोड़, जहाँ उसे पैदा होना है। वह कुछ सांसारिक प्रभुत्वमय शक्तियों को प्राप्त करता है। भोजन के गन्ध से तृप्त होता है और अन्य विभिन्न अन्तराभविक सत्त्वों को देख सकता है। अभिधर्मकोश में कहा है—

सजातिशुद्धदिव्याक्षिदृश्यः कर्मर्द्धिवेगवान् ।
सकलाक्षोऽप्रतिघवानभिवर्त्यः स गन्धभुक् ॥ 3.14 ॥

वह समानजातीय अन्तराभव से और सुविशुद्ध दिव्य चक्षु से देखा जाता है, अर्थात् वह देवादि सजातीय अन्तराभव से देखा जाता है। वह सुविशुद्ध दिव्य चक्षु से भी देखा जाता है। उस दिव्य चक्षु से जो 'अभिज्ञामय' है, क्योंकि वह चक्षु सुविशुद्ध है। वह 'प्राकृतिक' या 'उपपत्ति-प्रतिलम्भिक' दिव्य चक्षु, यथा देवों के दिव्य चक्षु से नहीं देखा जाता। अन्य आचार्यों के अनुसार देवान्तराभविक सब अन्तराभवों को देखता है। मनुष्य-प्रेत-तिर्यक्-नारक-अन्तराभविक पूर्व-पूर्व को अपास्त कर शेष को देखता है[1]। वह कर्म के ऋद्धि-वेग से समन्वागत है, अर्थात् वह कर्मर्द्धिवेगवान् है :— कर्म से प्रवृत्ति ऋद्धि अर्थात् आकाशगमन के वेग से समन्वागत है। स्वयं बुद्ध उसके वेग को नहीं रोक सकते, क्योंकि वह कर्मबल से समन्वागत है। उसकी इन्द्रियाँ सकल, सम्पूर्ण हैं। वह सकलाक्ष है। 'अक्ष' शब्द का अर्थ 'इन्द्रिय' है, वह अप्रतिघ है। जिसका कोई प्रतिघात न हो, वज्र भी उसके लिये अप्रतिघ है। उसका निवर्तन नहीं हो सकता। अन्तराभव मनुष्य मनुष्य न रह कर अन्तराभव देव कभी नहीं होता। जिस गति के अनुसार उसकी आकृति है, उसी गति में उपपन्न होने पर वह जायगा।

कामधातु का अन्तराभव क्या अन्य कामावचर सत्त्वों के सदृश कबड़ीकार आहार का भक्षण करता है ? हाँ, किन्तु स्थूल आहार का नहीं। वह गन्ध का भक्षण करता है। इससे उसका नाम गन्धर्व है। 'गन्धर्व' वह है, जो गन्ध को खाता है।

यदि अन्तराभव सत्त्व दुःखी जगत् में पैदा होने जा रहा है, तो उसे सर्वप्रथम अन्धकार का दर्शन होगा, अर्थात् वह बरसाती रात आदि के घने अन्धकार को देखेगा, यदि वह सुखी जगत् में पैदा होने वाला है, तो वह चमकते प्रकाश युक्त स्वच्छ चन्द्रमा को देखेगा। कुछ शास्त्र कहते हैं कि जो सत्त्व नरक में पैदा होने वाला है, वह जगत् की सभी वस्तुओं को काली, भूरी, जली

1. द्रष्टव्य—विभाषा (70-13)। क्या अन्तराभव एक दूसरे को देखते हैं ? कौन किसको देखता है ? इसमें विविध मत हैं। कुछ के अनुसार नारक अन्तराभव केवल नारक अन्तराभवों को देखता है ... ... देव अन्तराभव केवल देव अन्तराभव को देखता है। दूसरे आचार्यों के अनुसार तिर्यक् अन्तराभव नारक और तिर्यक् अन्तराभव दोनों को देखता है ... अन्य आचार्यों के अनुसार पाँच जाति पाँचों जातियों को देखती हैं (अभि० पृ० 292 टि०)।

हुई लड़कियों को भाँति देखता है। वह सत्त्व जो प्रेतलोक में पैदा होने वाला है, धूमिल रंग-रूप को देखेगा। जो सत्त्व स्वर्गलोक में पैदा होने के लिये नियत हैं, वे स्वर्णिम प्रकाश को देखेंगे, जो सत्त्व रूपधातु (रूपलोक) में उत्पन्न होने के लिये नियत (निश्चित) हैं, वे स्वच्छ प्रकाश को देखेंगे। वे सत्त्व जो अरूप धातु में नियत हैं, उन्हें अन्तराभव-बोध नहीं होगा वे सत्त्व मृत्यु के पश्चात् तुरन्त अरूपधातु में जन्म लेंगे। यह कहा जाता है कि जो सत्त्व अरूपधातु श्रेणियों में पैदा होंगे, वे पुनः अन्तराभव का अनुभव करेंगे।

जब उसका पृथिवी धातु तत्त्व विसन्तुलित होता है, तो अन्तराभविक सत्त्व बिजली की कड़क की आवाज को सुनता है। जब उसका जल तत्त्व क्षुब्ध होता है, तो वह समुद्र की तरंगों की आवाज (गूँज) को सुनता है। जब उसका अग्नितत्त्व क्षुब्ध होता है, तो वह जंगल की प्रज्वलित आग के भयंकर निर्नाद को सुनता है और अन्त में जब उसका वायु तत्त्व भी क्षुब्ध होता है, तो वह प्रचण्ड तूफान की ऊँची (उच्च) चीत्कार (चीख) को सुनता है।

तीन कामगत भाव (राग, द्वेष और मोह) द्वारा अन्तराभविक सत्त्व को विभिन्न प्रकार के भयावह (डरावने), पूर्ण सफेद, लाल और काली आकृति के दर्शन होते हैं, जिसके कारण उसके क्षुब्ध विचार ऐसे खड़े होते हैं, जैसे मानों भयंकर दैत्य और राक्षस उसके सामने उसको खा जाने (लील जाने) के लिये पहुँच रहे हों।

अन्तराभव सत्त्व के गुण

1. अन्तराभवसत्त्व के शरीर का कहीं प्रतिरोध नहीं होता, उसकी छाया नहीं होती और एक क्षण में वह कई देशों का भ्रमण कर सकता है। संवरोदय तन्त्र में कहा है—

अन्तराभवसत्त्वस्य प्रदेशान्तरगामिवत्।
कथञ्चित् कर्मसूत्रेण षड्गतिश्च प्रजायते ॥ 2.13 ॥

2. अन्तराभवसत्त्व अन्य क्षेत्रों में अपने कार्यों को नहीं देख सकता।

3. वह अतीन्द्रिय द्रष्टा तथा दूरभाष वाला होता है।

4. वह न सूर्य, न चन्द्रमा और न तारों को ही देखता है।

5. वह सहज आत्मा के अच्छे-बुरे पूर्व जन्म के कृत्यों (कार्यों) का निरीक्षण करता है।

6. यद्यपि वह भोजन देखता है, किन्तु वह तब तक उसे नहीं ग्रहण करता, जब तक कि उसे वह उपहृत न किया जाय। अभिधर्मकोश में कहा है—

सजातिशुद्धदिव्याक्षिदृश्यः कर्मर्द्धिवेगवान्।
सकलाक्षोऽप्रतिघवाननिवर्त्यः स गन्धभुक् ॥ 3.14 ॥

यद्यपि ऊपर जो लक्षण दिये गये हैं, उनके पूर्णरूप से उन (अन्तराभव सत्त्व) में मिलना कठिन है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य (सत्त्व) के कर्म समान (सदृश) नहीं होते। उसके परि-

णाम भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिये कई मार्गों में अन्तराभव अवस्था स्वप्न की अवस्था की भाँति बहुत कम देर तक रहने वाली अनिश्चित होती है।

अन्तराभव कितने काल तक अवस्थान करता है ?

अन्तराभव सत्त्व का जीवनकाल अधिक से अधिक सात दिन का होता है। लेकिन इसके बीच में अन्तराभव सत्त्व पुनः पैदा नहीं होता। वह गिर कर मूर्छित सा हो जाता है और तुरन्त दूसरे अन्तराभव में चला जाता है। इस प्रकार यह क्रम सात बार आवर्तित होकर 49 दिन तक हो सकता है। संवरोदय तन्त्र में कहा है—

मायोपमसमाधिं च न प्रजानन्ति मानुषाः।
अनादिकालिकक्लेशवासनाप्रबलीकृताः ॥
तेन पुराकृतं कर्मं च्युत्युत्पत्तिः संभवेत्।
सामग्रीं न लभते तावत् सप्ताहमन्तराभवे (तिष्ठति) ॥ (2.11-12)

योगाचारभूमिशास्त्र में भी कहा है—'स पुनरन्तराभवः सप्ताहं तिष्ठत्यसत्युपपत्तिप्रत्ययलाभे। सति पुनः प्रत्ययलाभेऽनियमः। अलाभे पुनश्च्युत्वा पुनः सप्ताहं तिष्ठति यावत् सप्त सप्ताहानि तिष्ठत्युपपत्तिप्रत्ययमलभमानः। तत ऊर्ध्वमवश्यमुपपत्तिप्रत्ययं लभते। तस्य च सप्ताहच्युतस्य कदाचित्तत्रैवाभिनिर्वृत्तिर्भवति। कदाचिदन्यत्र विसभागे। स चेत्कर्मान्तरक्रिया परिवर्तेत, तदन्तराभवबीजं परिवर्तयति' (विधुशेखर भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित, पृ० 19)।

अभिधर्मकोश में वसुबन्धु कहते हैं—अन्तराभव कितने काल तक अवस्थान करता है? इसका कोई नियम नहीं है। जब तक उत्पत्ति के लिये आवश्यक हेतुओं का सन्निपात नहीं होता, तब तक वह अवस्थान करता है। वास्तव में एक ही कर्म से अन्तराभव और तदनन्तर का उपपत्तिभव आक्षिप्त होता है और उनका एक निकायसभागत्व है[1] (वह एक भव के हैं)। अन्यथा अन्तराभव के आयुष्य (या जीवितेन्द्रिय) के क्षीण होने से मरण-भव का प्रसंग होगा।

भदन्त वसुमित्र कहते हैं कि अन्तराभव सात दिन तक अवस्थान करता है। यदि उपपत्ति के लिये आवश्यक प्रत्यय सामग्री नहीं है, तो अन्तराभव की मृत्यु होती है और वह पुनः उत्पन्न होता है। अन्य आचार्यों का कहना है कि उसका अवस्थान-काल सात सप्ताह का है।[2] वैभाषिक कहते हैं कि यह उपपत्ति (सम्भव) की अभिलाषा करता है। इसलिये यह

---

1. एकनिकायसभागत्वात्। हम समझते हैं कि अन्तराभव अति दीर्घकाल तक अवस्थान कर सकता है, क्योंकि जिस हेतु से यह आक्षिप्त हुआ है, उसी से पूर्वकालभव की आयु, जो प्रायः दीर्घ होती है, आक्षिप्त होती है (अभिधर्मकोशव्याख्या, पृ० 294 टि०)।

2. कथावत्थु के "तीर्थिकः सत्ताहं वा अतिरेकसत्ताहं व तिट्ठति" आदि के जो वाद तिब्बत में पाये जाते हैं, उनके लिये जाश्के और शरच्चन्द्रदास द्वारा प्रकाशित 'वर-दो' लेख देखिये। उसमें कम या अधिक काल के लिये सामान्यतः 49 दिन से कम के ... और 49 दिन से अधिक नहीं। (अभि०-पृ० 295 टि०)

अल्पकाल के लिये ही अवस्थान करता है और प्रतिसन्धि-ग्रहण के लिये वेग से जाता है।

प्रतिसन्धि कैसे होती है ?

अन्तराभव सत्त्व उस स्थान के प्रति अधिक अनुरक्त होता है, जहाँ उसे पुनः उत्पन्न होना होता है। इसलिये वह उसे देखता रहता है। वह जब पैदा होता है, तो भीगा या गर्म रहता है और वह भाप और गन्ध के द्वारा आकर्षित होता है।

जो सत्त्व अण्ड से उत्पन्न होता है—हंस, क्रौंच, मयूर, शुक, सारस आदि, वह अत्यधिक अनुरक्त अपने माता-पिता के प्रति घृणा रखता है, जब वह उनकी मैथुन क्रिया को देखता है। पुरुष के रूप में पैदा होने वाले सत्त्व की अपनी माता के प्रति आसक्ति होती है तथा पिता के प्रति अनासक्ति। स्त्री के रूप में पैदा होने वाले सत्त्व में इसके विपरीत अनुराग और घृणा पैदा होते हैं। अन्तराभव सत्त्व मूर्छित अवस्था में गिरता है और बिना उसे अनुभव किये ही वह पुनः उत्पन्न होता है। अभिधर्मकोश में कहा भी है—

विपर्यस्तमतिर्याति गतिदेशं रिरंसया।
गन्धस्थानाभिकामोऽन्य ऊर्ध्वपादस्तु नारकः ॥ 3.15 ॥

विपर्यस्तमति रमण करने की इच्छा से गति-देश को जाता है, अर्थात् गम्य गति-देश को गमन करने के लिये अन्तराभव का उत्पाद होता है। कर्मों के योग से यह दिव्य-चक्षु से समन्वागत होता है। यह अपने उत्पत्ति-देश को, चाहे वह विप्रकृष्ट क्यों न हो, देखता है। वहाँ वह अपने माता-पिता को विप्रतिपत्ति को देखता है। उसकी गति अनुनय-सहगत और प्रतिघ-सहगत चित्त से विपर्यस्त होती है। यदि वह पुरुष है, तो माता के प्रति उसमें पौंस्न राग उत्पन्न होता है। यदि वह स्त्री है, तो उसमें पिता के प्रति स्त्रैण राग उत्पन्न होता है। इसके विपर्यय, पिता और माता के लिये उसमें प्रतिघ उत्पन्न होता है। इनको वह सपत्न या सपत्नी के समान देखता है। यथा [1]प्रज्ञप्ति में कहा है कि तब गन्धर्व में रागचित्त या द्वेषचित्त उत्पन्न होता है।

इन दो विपर्यस्त चित्तों से विपर्यस्तमति होकर रमण करने की कामना से वह उस देश में आश्लिष्ट होता है, जहाँ इन्द्रिय-द्वय आश्लिष्ट हैं और उस विप्रतिपत्ति-अवस्था को अपने में अधिमुक्त करता है। उस समय गर्भस्थान में अशुचि शुक्र और शोणित होते हैं। अन्तराभव सुख का आस्वादन कर वहाँ अभिनिविष्ट होता है। उस काल से स्कन्धों का काठिन्य होता है। अन्तराभव विनष्ट होता है। उपपत्ति-भव, जिसे 'प्रतिसन्धि' कहते हैं, उत्पन्न होता है। यदि

1. यह वाद कामोन्मत्त प्रेतों का स्मरण दिलाता है, जो प्राचीन गन्धर्व हैं। इस वाद ने तन्त्र साहित्य में स्थान पाया है (चण्डमहारोषणतन्त्र, 16 अध्याय देखिये)।

गर्भ पुरुष है, तो यह योनि के दक्षिण पार्श्व में पृष्ठाभिमुख उत्कुटुक अवस्थित होता है। यदि यह स्त्री है, तो गर्भ योनि के वाम पार्श्व में कुक्षि के अभिमुख[1] अवस्थित होता है। जो अव्यंजन है, वह उस ईर्यापथ में पाया जाता है, जिसमें अन्तराभव उस समय होता है, जब वह कल्पना करता है कि मैं रति की क्रिया कर रहा हूँ। वास्तव में अन्तराभव सकल इन्द्रियों से समन्वागत होता है। अतः वह पुरुष या स्त्री के रूप में प्रवेश करता है और अपने व्यंजन के अनुरूप अवस्थान करता है। प्रतिसन्धि के अनन्तर गर्भ की वृद्धि होती है और तभी वह अपने व्यंजन का त्याग कर सकता है। इस प्रकार जो सत्त्व स्वर्ग में पैदा होने वाला होता है, वह बहुत सुन्दर स्वर्गीय विश्राम के साथ मातृ-पितृ देवों की इच्छाओं से युक्त होता है।

जो सत्त्व नरक में पैदा होने वाला होता है, वह भयानक दृश्यों को देखता है और वह उनसे बचने का निराशाजनक प्रयास करता है। यदि वह किसी गुफा, गड्ढे या पेड़ के नीचे से बच निकला है, तो वह पशुरूप में पैदा होता है। यदि वह किसी लोह-गृह से बच निकला है, तो वह नरक में पैदा होता है।

जब अन्तराभविक सत्त्व मरता है, तो वह चार अवस्थाओं में से अन्तर्लीन पद्धति से गुजरता है। जैसे—1. प्राण का प्राकट्य, 2. देदीप्यता (वृद्धिता, संवर्धनता), 3. पूर्णता (सिद्धता), 4. सहज प्रकाश। उसके बाद उल्टा क्रम शुरू होता है, अर्थात् सहज देदीप्यता से सहज पूर्णता, सहज पूर्णता से देदीप्यता, देदीप्यता से प्राकट्य और फिर अस्सी प्रकार के विभेदक विचार और उनसे प्राणतत्त्व, फिर अग्नि, तब तक जब तक कि चित्त (मन) और काय का संमिश्रण पूर्ण न हो जाय।

अन्तराभव योग की साधना

मृत्यु के समय जब सूर्य और मातृप्रकाश एक साथ विलीन (अन्तर्लीन) होजाते हैं, तो सभी सूक्ष्म सास्रव (समल) तत्त्व विभेदक विचारों के साथ शान्त हो जाते हैं। ऐसे समय में एक उच्च योगी (साधक), जिसने योग के उदय तथा पूर्णता पर दक्षता प्राप्त कर ली है, तुरन्त पूर्ण बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है। इस तरह जो साधक सुगम रूप में इसमें आगे बढ चुका है, वह महामुद्रा का दिन-रात अभ्यास करके मृत्यु के प्रकाश को रोक सकता है, तब जब कि अन्तराभव का दृश्य उपस्थित हो, वह अपने में उसका उपयोग (अनुभव) कर सकता है।

---

1. "(स चेत्) पुनः स्त्री भवति, स पृष्ठवंशं निश्रित्योरसं पुरस्कृत्य वामे पार्श्वे मातुरवतिष्ठते। स चेत् पुमान् भवति स उरो निश्रित्य पृष्ठवंशं पुरस्कृत्य दक्षिणे मातुरवतिष्ठते" (योगाचारभूमिशास्त्र, पृ० 29 विधुशेखर भट्टाचार्य द्वारा संपादित)।
   दक्षिण में पुत्र, वाम में दुहिता। (अवदानशतक 1.14)

कुछ आचार्यों का कहना है कि यह तब संभव है, जब थोड़ा भी गुण साधक (योगी) में पैदा हो रहा हो। तब वह धर्मकाय का मृत्यु के समय अनुभव कर सकता है और संभोगकाय तथा निर्माणकाय का अन्तराभव अवस्था में, किन्तु यह कथन कुछ शास्त्रों के अनुसार विपरीत तथा आधारहीन लगता है। जो इस प्रकार कहते हैं, वे अनुभव नहीं करते कि प्रकाश को क्षण भर के लिये भी कैसे पकड़ा जा सकता है? यह बहुत कठिन कार्य है। अन्तराभव में उस समय सत्त्व भ्रमित एवं भयग्रस्त होता है, जब कि वह अपने आगे की भावना में इसे साधन के रूप में प्रयोग करता है।

यह स्पष्टतया निर्देशित किया जा सकता है कि हमें जगत् के सत्त्वों (लोगों) के स्वप्न एवं निद्रा के प्रकाश को यहाँ तुरन्त पहचानने में बहुत कठिनाई का अनुभव होता है, किन्तु फिर भी यदि हम प्रभास्वर प्रकाश(योग) और स्वप्न(योग) के स्वरूप को पहचान लें, तो हम स्वप्न पर आधिपत्य, अर्थात् उसका जैसा चाहे वैसा परिवर्तन कर सकेंगे। इस आलोचना से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो साधक अपने जीवनकाल में इस योग की साधना करते हैं, वे उससे मृत्यु और अन्तराभव के समय में अवश्य लाभान्वित होंगे।

सभी निर्देश इस संसार के और अन्तराभव के सांस्कारिक अस्तित्व में अन्तराभव से आते हैं। मृत्यु और जन्म के बीच का समय अन्तराभव कहलाता है, अर्थात् जन्म और मृत्यु का अन्तराभव। इसी प्रकार सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्था के बीच में पड़ने वाला समय स्वप्न का अन्तराभव और मृत्यु तथा जन्म के मध्य का समय मात्र अन्तराभव होता है।

इन अन्तराभवों में चण्डालीयोग, मायाकाययोग, प्रभास्वरयोग, स्वप्नयोग, अन्तराभवयोग और संक्रमण (परिवर्तन) योग क्रमशः साधना के लिये अपनाये जाते हैं। सोते और जागते समय इस साधक को सोचना चाहिये कि वह जो देख रहा है, सुन रहा है, स्पर्श कर रहा है, वह उसकी अन्तराभव अवस्था ही है। इसलिये उसे जानना चाहिये कि यह निरन्तर और बार-बार का शिक्षात्मक साधनाभ्यास ही अन्तराभव की एक शुरुआत है।

बहुत से आचार्यों ने कहा है कि अन्तराभव की साधना के बीच में एक क्षण के लिये भी उपदेशों को नहीं भूलना चाहिये, चाहे उसका सात भयंकर कुत्तों के द्वारा भी पीछा क्यों न किया जा रहा हो। जब मृत्यु का समय समीप आवे, तो उसे अपना सम्पूर्ण धन और वस्तुएँ त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) को समर्पित कर देनी चाहिये, उसे दान दे देना चाहिये तथा बिना भेदभाव के सारे राग-बन्धनों को काट देना चाहिये। समय के उपदेश को ठीक से अभ्यास में लाना चाहिये। उसे सब पापमय कृत और ऊर्ध्वगामी अतिक्रमणों के लिये पश्चात्ताप करना चाहिये। उसे अपने गुरु से पुनः अभिषेक लेना चाहिये या बुद्ध से समय की साधना पुनः प्राप्त कर लेनी चाहिये। यदि उसने बीच ही में अभ्यास छोड़ दिया है, तो उसे अपने गुरु या स्वयं बुद्ध की निष्ठापूर्वक प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे वह मृत्यु के प्रकाश और अन्तराभव के मायाकाय को

रोक सके और अपने आध्यात्मिक मित्रों पर विश्वास कर सके, जो उसे उसकी मृत्यु के समय के प्रशिक्षण (अभ्यास) का स्मरण करा सकें।

अत्यन्त उच्च योगी मृत्यु के समय अन्तर्लीनता के योग का अभ्यास करता है और स्वतः प्रभास्वर प्रकाश पर ध्यानस्थ हो मृत्यु-प्रकाश में मिल जाता है। तब प्रकाश से अपने प्राण चित्त (मन) को ऊपर उठाता है तथा संभोगकाय और निर्माणकाय को पूर्ण करता है।

वह योगी जो महामुद्रा की चतुर्थ स्थिति में पहुँच गया है, यह मातृपुत्र प्रकाश को मृत्यु के साथ जोड़ देता है। इससे उसके शरीर के सभी कार्मिक बन्धन और चित्त (मन) का आविर्भाव कट जाते हैं और बुद्धत्व के गुण पूर्ण होते हैं। उसका चित्त धर्मकाय, उसका शरीर प्रज्ञाकाय तथा उसका स्थान पूर्ण और पवित्र हो जाता है।

इस प्रकार अत्यन्त उन्नत योगी और भी उच्च योगी के रूप में अभ्यास करता है और उसमें सफल होकर वह अन्तराभव की अवस्था से आगे प्रस्थान कर और अधिक उच्च भूमि की साधना में पहुँचता है और यदि ऐसा नहीं होता तो उसे बुद्ध के विशुद्ध क्षेत्र में पैदा होने के लिये प्रार्थना करनी पड़ती है तथा संक्रमण (परिवर्तन) योग के उपदेश का अभ्यास करना पड़ता है।

जो सामान्य योगी है, वह न तो मृत्यु के प्रकाश को और न मायाकाय के प्रकाश को रोक सकता है, अतः उसे अपनी चेतना को सतर्क करना चाहिये तथा अपने सुनिश्चित बोध से या दृढ संकल्प से मृत्यु और अन्तराभव की चुनौतियों को दूर करने वाली शिक्षाओं का अभ्यास करना चाहिये।

जो योगी मृत्यु और अन्तराभव के योग का उपयोग निर्वाण के सन्दर्भ में नहीं करेगा, उसे संसार में पुनर्जन्म लेने के लिये प्रतिज्ञप्त कर दिया जायगा। अतः इससे बचने के लिये उसे निम्नलिखित अभ्यासों का जीवन में उपयोग करना होगा।

यदि अन्तराभविक सत्त्व ऐसे स्थान पर आवे, जो उसे अत्यन्त प्रिय एवं आकर्षक लगता हो, तो वह उसे अपने इष्टदेव या संरक्षक बुद्ध का मण्डल समझे।

यदि वह स्त्री-पुरुष के रागानुबन्ध से राग और द्वेष को पैदा करे, तो उसे स्वयं को सावधान करना चाहिये और समझाना चाहिये कि माता-पिता बुद्ध के तृतीय अभिषेक में दीक्षित हैं। उसे शून्यानन्द के अनुभव को स्वीकार करना चाहिये और समझना चाहिये कि राग और द्वेष प्रातिभासिक और शून्यमात्र हैं। इस प्रकार शून्यता पर जोर देता हुआ योगी सांसारिकता से सदैव के लिये मुक्त हो सकता है।

यदि अन्तराभविक सत्त्व इसे सफलता पूर्वक कर सकता है, तो वह पुनः उत्पत्ति से बच सकता है तथा अपने सात दिनों के अन्तराभव काल में उसे इसमें कोई कठिनाई पैदा नहीं होगी। अन्तिम सात दिनों के पश्चात् वह विशुद्ध बुद्धक्षेत्र में पैदा होगा।

यदि अन्तराभविक सत्त्व विशुद्ध बुद्धक्षेत्र में उत्पन्न होना चाहता है, तो वहाँ उत्पन्न होने के लिये उसे एक तीव्र इच्छा अपने में पैदा करनी होगी। यह बहुत महत्त्व का कार्य है। तब वह संक्रमण (परिवर्तन) योग की शिक्षाओं को समझे, जिससे वह 'एक क्षण' में ही विशुद्ध क्षेत्र में उत्पन्न होगा।

इस प्रकार अन्तराभव योग का संक्षेपतः तीन कार्यों के रूप में अनुभव किया जा सकता है—

1. मृत्यु के समय में धर्मकाय का अनुभव होता है।
2 अन्तराभव में संभोगकाय का अनुभव होता है।
3. पुनर्जन्म ग्रहण करने में निर्माणकाय का अनुभव होता है।

इस प्रकार यह एक मार्ग (पथ) है जो बुद्ध के त्रिकाय की उपलब्धि के मार्ग की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

•

बौद्ध दोहों में दृष्टान्त

—पेन्पा दोर्जे—

सिद्धों के दोहे बौद्ध धर्म-दर्शन की प्रस्तुति की एक अनोखी विधा है। इन दोहों में सिद्धों ने अपनी-अपनी अनुभूतियों के अनुसार अपने मत को सरल से अतिसरल शब्दों में प्रस्तुत किया है, जिससे कि सामान्य पुरुष भी उसे सहज रूप से समझ सके। इनके दोहों में उपदेश, व्यवहार, दर्शन तथा मतमतान्तरों का समावेश है। इन विषयों को सिद्धों ने व्यावहारिक भाषा में उपमाओं का सहारा लेकर सरल रूप से प्रस्तुत किया है, जो अपने आप में एक उदाहरण है। दृष्टान्तों का प्रयोग प्रायः सभी रचनाओं में होता है, परन्तु सिद्धों ने अपनी रचनाओं में जिन दृष्टान्तों का प्रयोग किया है, वह दैनिक व्यवहार पर आधारित हैं। उनकी कविता में शास्त्र-सम्मत गुणों का अभाव नहीं है। उपमा का वह प्रायः सुन्दर प्रयोग करते हैं[1]। सरहपाद आदि सिद्धों की रचनाएँ प्रायः मूल भाषा में बहुत कम उपलब्ध हैं। उनकी रचनाओं की भाषा अपभ्रंश मानी जाती है। तंग्युर में उनके तिब्बती अनुवाद सुरक्षित हैं। इन तिब्बती अनुवादों के आधार पर इनकी रचनाओं पर शोध कार्य अपेक्षित है। तंग्युर में सुरक्षित भोट भाषा में अनूदित रचनाओं की सूची हम यहाँ तालिका के रूप में पूरे विवरण के साथ प्रस्तुत कर रहे हैं—

1. दोहाकोश भूमिका, पृ॰ 22, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, 1957

S. No.	Title	Author	Title No.	Vol.	Page No.
1.	दोहाकोषगीति Dohākoṣagīti	सरहपा Saraha-pā	2224	Wi	$70b^{4} - 77a^{3}$
2.	दोहानिधिनाम-तत्त्वोपदेश Dohānidhi-nāma-tattvopadeśa	अवधूतिपा Avadhūti-pā	2247	,,	$137a^{3} - 137b^{6}$
3.	दोहाकोषपञ्जिका Dohākoṣapañjikā	अद्वयवज्र Advayavajra	2256	,,	$180b^{3} - 207a^{7}$
4.	दोहानिधिकोषपरिपूर्णगीतिनाम-नित्यतत्त्वप्रकाशटीका Dohānidhikoṣaparipūrṇagītināma-nityatattvaprakāśatīkā.	अद्वयवज्र Advayavajra	2257	,,	$207b^{1} - 265a^{3}$
5.	दोहाकोषपञ्जिकानाम Dohākoṣapañjikānāma	मोक्षाकरगुप्त Moksākaragupta	2258	,,	$265a^{3} - 283b^{1}$
6.	दोहाकोषनामचर्यागीति Dohākoṣanāmacaryāgīti	सरहपा Saraha-pā	2263	Shi	$26a^{6} - 28b^{6}$
7.	दोहाकोषोपदेशगीतिनाम Dohākoṣopadeśagīti-nāma	सरहपा Saraha-pā	2264	,,	$28b^{6} - 33b^{4}$
8.	दोहाकोषनाम-चर्यागीतिटीकार्थप्रदीप नाम Dohākoṣā-nāma-caryāgītiṭīkārthapra-dīpa-aāma	अद्वयमहासुख Advayamahāsukha	2265	,,	$33b^{4} - 55b^{2}$
9.	कखदोहानाम Kakhadohā-nāma	सरहपा Saraha-pā	2266	,,	$55b^{3} - 57b^{2}$

10.	कखदोहाटिप्पण Kakhadohāṭippaṇa	सरहपा Saraha-pā	2267	Shi	$57b^{2}$ – $65b^{7}$
11.	दोहाकोषहृदयार्थगीतिटीका Dohākoṣahṛdayārthagītiṭīkā	अवधूतिपा Avadhūti-pā	2268	,,	$65b^{7}$ – $106b^{4}$
12.	कायकोषामृतवज्रगीति Kāyakoṣāmṛatvajragīti	सरहपा Saraha-pā	2269	,,	$106b^{4}$ – $113a^{2}$
13.	वाक्कोषरुचिरस्वरवज्रगीति Vākkoṣarucirasvarvajragīti	,,	2270	,,	$113a^{3}$ – $115b^{4}$
14.	चित्तकोषजवज्रगीति Cittakoṣajavajragīti	,,	2271	,,	$115b^{4}$ – $117a^{2}$
15.	कायवाक्चित्तामनसिकारनाम Kāyavākcittāmanasikāranāma.	,,	2272	,,	$117a^{3}$ – $122a^{3}$
16.	दोहाकोषनाममहामुद्रोपदेश Dohākoṣa-nāma-mahāmudropadeśa	,,	2273	,,	$122a^{5}$–$124a^{7}$
17.	द्वादशोपदेशगाथा Dvādaśopadeśagāthā	,,	2274	,,	$124a^{7}$–$125a^{3}$
18.	तत्त्वोपदेशशिखरदोहागीति Tattvopadeśaśikharadohāgīti	,,	2276	,,	$126b^{6}$ – $127b^{1}$
19.	भावसञ्चार Bhāvasañcāra	नागार्जुन Nāgārjuna	2277	,,	$127b^{1}$ – $128a^{6}$
20.	दोहाकोष Dohākoṣa	विरूपा Virū-pā	2280	,,	$134a^{1}$ – $136a^{4}$

S. No.	Title	Author	Title No.	Vol.	Page No.
21.	दोहाकोष Dohākoṣa	तिल्लोपा Tillo-pā	2281	Shi	$136a^4 - 137b^6$
22.	पञ्चगाथा Pañcagāthā		2282	,,	$137b^6 - 138a^4$
23.	श्रीविरूपपादचतुरशीति Śrīvirūpapādacaturaśīti	विरूपा Virū-pā	2283	,,	$138a^4 - 139a^6$
24.	महामुद्रावज्रगीति Mahāmudrāvajragīti	शबरपा Śabara-pa	2287	,,	$150a^2 - 152b^6$
25.	वज्रगीति Vajragīti	नरोपा Naro-pā	2288	,,	$152b^6 - 153a^1$
26.	वज्रगीति Vajragīti	,,	2289	,,	$153a^1 - 153a^4$
27.	वज्रगीति Vajragīti	,, ,,	2290	,,	$153a^4 - 153a^5$
28.	वज्रगीति Vajragīti	कण्हपा Kaṇha-pā	2291	,,	$153a^5 - 153a^6$
29.	चर्यागीतिकोषवृत्ति Caryāgītikoṣavṛtti	मुनिदत्त Munidatta	2293	,,	$158b^1 - 206a^7$
30.	दोहाकोष Dohākoṣa	कृष्णवज्र Kṛṣṇavajra	2301	,,	$229a^1 - 230a^6$

31.	श्रीकृष्णवज्रपाद-दोहाकोषटीका Śrikṛṣṇavajrapāda-Dohākoṣaṭīkā.	अमिताभ Amitābha	2302	Shi	$230a^6 - 242b^7$
32.	संसारमनोनिर्याणीकारनामसंगीति Saṃsāramanoniryāṇīkāra-nāma-saṁgīti	दीपङ्करज्ञान Dīpaṁkarajñāna	2313	,,	$253a^6 - 254b^7$
33.	धर्मधातुदर्शनगीति Dharmadhātudarśanagīti	दीपङ्कर Dīpaṁkara	2314	,,	$254b^7 - 260b^5$
34.	सहजगीति Sahajagīti	शान्तिदेव Śāntideva	2341	Zi	$1b^1 - 2a^1$
35.	तत्त्वस्वभावदोहाकोषगीतिकादृष्टि Tattvasvabhāvadohākoṣagītikādṛṣti	लूईपा Lūī-pā	2342	,,	$2a^1 - 2b^2$
36.	विकल्पपरिहारगीतिका Vikalpaparihāragītikā	लीलापा Līlā-pā	2343	,,	$2b^2 - 2b^7$
37.	कर्मचण्डालिकादोहाकोषगीति Karmacaṇḍālikādohākoṣagīti	विरूपा Virū-pā	2344	,,	$2b^7 - 3a^5$
38.	भावनादृष्टिचर्याफलदोहागीतिका Bhāvanādṛṣticaryāphaladohāgītikā	सरह Saraha	2345	,,	$3a^5 - 4a^1$
39.	दोहातत्त्वकोषगीतिका Dohātattvakoṣagītikā	थाकणपा Thākaṇa-pā	2346	,,	$4a^2 - 4a^5$
40.	चर्यादोहाकोषगीतिका Caryādohākoṣagītikā	कण्हपा Kaṇha-pā	2347	,,	$4a^6 - 4b^7$
41.	सहजानन्ददोहाकोषगीतिकादृष्टि Sahajānandadohākoṣagītikādṛṣti	भेदे Bhede	2348	,,	$4b^2 - 4b^5$

18

S. No.	Title	Author	Title No.	Vol.	Page No.
42.	सुगतदृष्टिगीतिका Sugatadṛṣtigītikā		2349	Zi	$4b^5 - 5a^3$
43.	वायुतत्त्वदोहागीतिका Vāyutattvadohāgī ika	महिपा Mahi-pā	2350	,,	$5a^3 - 5b^2$
44.	वसन्ततिलकदोहाकोषगीतिका Vasantatilakadohākoṣagītikā	सरहपा Saraha-pa	2351	,,	$5b^2 - 5b^6$
45.	वज्रचतुर्गीतिका Vajracaturgītikā	अद्वयवज्र Advayavajra	2:52	,,	$5b^6 - 6a^2$
46.	गुरुमैत्रीगीति Gurumaitrīgīti		2353	,,	$6a^2 - 6a^5$
47.	सरहपागीति Sarahapāgīti		2354	,,	$6a^6 - 6b^1$
48	सरहपागीति Sarahapagīti		2355	,,	$6b^1 - 6b^4$
49.	विरूपपादवज्रगीति Virūpapādavajragīti		2356	,,	$6b^4 - 6b^7$
50.	कण्हपागीति Kaṅhapāgīti		2357	,,	$6b^7 - 7a^1$
51.	वज्रगीति Vajragīti		2358	,,	$7a^1 - 7a^4$

52.	गीति Gīti	2359	,,	$7a^4 - 7a^7$
53.	गीति Gīti	2360	,,	$7a^7 - 7b^3$
54.	गण्डरगीति Gaṇḍaragīti	2361	,,	$7b^4 - 7b^6$
55.	मतिचित्रगीति Maticitragīti	2362	,,	$7b^6 - 8a^2$
56.	गीति Gīti	2363	,,	$8a^2 - 8a^4$
57.	गीति Gīti	2364	,,	$8a^5 - 8a^7$
58.	आचार्यसूर्यवैरोचनगीति Ācāryasūryavairocanagīti	2365	,,	$8a^7 - 8b^3$
59.	नारोपण्डितगीति Nāropaṇaḍitagīti	2366	,,	$8b^3 - 8b^6$
60.	लूयिपागीति Lūyipāgīti	2367	,,	$8b^6 - 9a^2$
61.	डोम्बिपागीति Dombipāgīti	2368	,,	$9a^2 - 9a^5$

S. No.	Title	Author	Title No.	Vol.	Page No.
62.	विरूपगीति Virūpagīti		2369	Zi	$9a^{5} - 9b^{1}$
63.	लबवपागीति Labavapāgīti		2370	,,	$9b^{1} - 9b^{4}$
64.	महासुखतागीति Mahāsukhatāgīti		2371	,,	$9b^{4} - 10a^{1}$
65.	योगिप्रसरगीति Yogiprasaragīti		2372	,,	$10a^{1} - 10a^{3}$
66.	नागार्जुनगीति Nāgārjunagīti		2373	,,	$10a^{3} - 10a^{6}$
67.	दीपङ्करश्रीज्ञानधर्मगीति Dīpaṅkaraśrijñānadharmagīti		2374	,,	$10a^{6} - 10b^{2}$
68.	दोहाचर्यागीतिकादृष्टि Dohācaryāgītikādṛṣti	किरपा Kira-pā	2425	,,	$39b^{6} - 40a^{3}$
69.	महामुद्रोपदेशवज्रगुह्यगीति Mahāmudropadeśavajraguhyagīti	सरहपा Saraha-pā	2440	,,	$55b^{7} - 62b^{6}$
70.	श्रीवज्रडाकिनीगीति Śrivajraḍākinīgīti		2441	,,	$62a^{6} - 64b^{7}$

No.	Title	Author	No.	Vol.	Folios
71.	वज्रडाकिनीगीति Vajraḍākinīgīti	dByiṅs-kyi-mThso-mo	2442	Zi	$64b^{7} - 67a^{2}$
72.	चित्तगुह्यदोहा Cittaguhyadohā	डाकिनी Ḍākinī	2443	,,	$67a^{3} - 71a^{7}$
73.	डाकिनीवज्रगुह्यगीति Ḍākinīvajraguhyagīti	डाकिनी Ḍākini	2446	,,	$79a^{3} - 81a^{2}$
74.	चित्तगुह्यगम्भीरार्थगीति Cittaguhyagambhīrārthagīti	शबरिपा Śabari-pā	2448	,,	$82b^{1} - 83a^{1}$
75.	डाकिनीतनुगीतिनाम Ḍākinītanugītināma.		2451	,,	$88a^{1} - 90a^{4}$
76.	सर्वयोगतत्त्वालोकनाम-विकलवज्रगीति Sarvayogatattvālokanāma-vikalavajragīti		2453	,,	$92b^{1} - 115b^{3}$

सिद्धों ने दोहों में संसार की यथावत् स्थिति, प्राणियों की मनःस्थिति को तथा अन्य विषयों को आकाश, स्वप्न, माया, वृक्ष, अग्नि, मरीचि इत्यादि अनेक दृष्टान्तों द्वारा प्रस्तुत किया है। सरह ने अनेक दोहों और गीतियों की रचना की है, जो मूल-भाषा में उपलब्ध नहीं हैं। उनके दोहे और चर्यागीतियाँ दृष्टान्तों से भरी पड़ी हैं। इसी तरह अन्य सिद्धों ने भी अपने दोहों को दृष्टान्तों से सँजोया है, जिनके कारण सामान्य जनमानस में इन्होंने गहरा स्थान पाया है। उनकी कथनशैली में सरलता झलकती है, जो गम्भीर से गम्भीर विषय को भी दृष्टान्त के सहारे सरल से अतिसरल बना देती है। ये सिद्ध एक दोहे में सभी विषयों का समावेश इतनी सरल भाषा में करते हैं, जो कि सब के लिये सुबोध होती है। इसका एक उदाहरण सिद्ध मंजुश्रीमित्र का यह वचन है—"यदि रत्नद्वीप पहुँच जाय तो उसे दरिद्रता से राहत मिलेगी, यदि गुरु का आशीर्वाद प्राप्त हो, तो भ्रान्ति दूर हो जायगी। यदि मन को तत्त्व का दर्शन हो जाय, तो संसार नहीं रहेगा और यदि बोधिसत्त्व दशा में अभ्यस्त हो जाय, तो वह जगत् के कल्याण में निरत हो जायगा"[1]।

सिद्धों ने दृष्टान्तों को अनेक विषयों के साथ जोड़ा है। आकाश की कहीं संसार की यथावत् स्थिति से तुलना की है, तो कहीं मनःस्थिति से। इसी विषय को कहीं स्वप्न से जोडा है, तो कहीं माया से। इसी तरह सिद्धों ने अपनी-अपनी अनुभूतियों को उपमाओं के सहारे अत्यन्त सरलता से प्रस्तुत किया है। उनके दोहों में वस्तुओं की अनित्यता, सत्कायदृष्टि द्वारा संसार में जन्म, उससे मुक्ति का मार्ग, आत्मग्रह का खण्डन, नैरात्म्य का मण्डन, निःस्वभावता आदि विषयों का वर्णन है। इन सब विषयों को सरल उपमाओं के सहारे जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, वह महत्त्व का विषय है।

अपने विषयों की प्रस्तुति में सिद्धों ने उपमाओं का किस प्रकार प्रयोग किया है, इस पर विचार अपेक्षित है। आचार्यों ने निःस्वभावता, नैरात्म्य, परमार्थ, असत् इत्यादि की विवेचना रथ, पट, घट आदि दृष्टान्तों के प्रयोग से की है। इन्हीं विषयों को सिद्धों ने स्वप्न, आकाश आदि उपमाओं के द्वारा प्रस्तुत किया है। जैसे कि —"यदि परीक्षा करें तो स्व-पर वस्तु असत् है। वह गूँगे बालक के स्वप्न के समान है"[2]। यहाँ स्वप्न को दृष्टान्त के रूप में लेकर सभी पदार्थों की निःस्वभावता का वर्णन किया गया है। गूँगा बालक स्वप्न तो देखता है, पर बोलने में असमर्थ होने से कुछ भी बता नहीं सकता। इसी तरह से व्यावहारिक रूप तो विद्यमान है, पर उसकी सत्ता की परीक्षा करें, तो उसके स्वभाव को हम समझ नहीं सकते। इसी बात को इस तरह बताया गया है—"सभी धर्म स्वभाव से शून्य हैं, जो भी (व्यक्ति) उसे स्वप्न की तरह

1. डाकिनीवज्रगुह्यगीति, स्दे० 2443, पृ० 69
2. दोहातत्त्वकोशगीतिकानाम, स्दे० 2346, पृ० 4

जान लेगा, वह सभी बन्धनों से मुक्त हो जायगा। वह परतन्त्र जन्म और मृत्यु नहीं भोगेगा"[1]। यहाँ भी स्वप्न को लेकर धर्मों की निःस्वभावता की व्याख्या की गई है, सभी धर्मों को स्वप्न की तरह बताया गया है। जो भी पुरुष धर्म को स्वप्न की तरह समझ पाता है, वह सभी आवरणों के बन्धन से मुक्त हो जायगा। सभी धर्म स्वभाव से शून्य हैं, इस विषय को सरल रूप में कहने के लिये स्वप्न की उपमा दी गई है। स्वप्न का कोई सार नहीं होता। इस बात को एक साधारण पुरुष भी समझता है। इसी लिये सिद्धों ने स्वप्न की उपमा दी है। इस तरह से सिद्धों ने लोकप्रसिद्ध उपमाओं के द्वारा न केवल संसार का मूल अविद्या और उससे मुक्ति का उपाय ही बताया है, अपितु सभी धर्मों की निःस्वभावता और उसके ज्ञान से होने वाले फल की प्राप्ति को भी बताया है।

स्वप्न को लेकर सिद्धों ने जहाँ धर्मों के स्वभाव की व्यवस्था की है, वहीं आकाश की उपमा के द्वारा भी धर्मों की वास्तविकता बताई है। सिद्ध तेगचे-पा कहते हैं—"देखो, आकाश मण्डल को देखो, जो अदृश्य है, वह (तत्त्व) दर्शन है। बैठो, सागर के तल में बैठो, जो अचल है, वही ध्येय है। पकड़ो, आकाश में वायु को पकड़ो, जो अग्राह्य है, वह शून्य है[2]। यहाँ आकाशमण्डल में जो अदृश्यता है, उसे तत्त्वदर्शन कहा गया है। जो अदृश्य है, या जो नहीं देखता है, वही परम दर्शन है। इसमें भी अपना ध्येय छिपा है। आकाश में वायु का पकड़ना शून्यता निर्देश के लिये कहा है।

आकाश की उपमा का प्रयोग चित्त के स्वभाव-निर्देश के लिये भी किया गया है। सरह कहते हैं—"चित्त खसम जहि समसुह पइट्ठइ"[3]। चित्त का स्वरूप आकाश की तरह निर्मल एवं स्वच्छ बताया गया है। उसके स्वभाव में मल प्रविष्ट नहीं है। वह आकाश की तरह आकस्मिक मलों से लिप्त है। जिस प्रकार आकाश में बादलों के छा जाने से वह अपने स्वरूप में स्थित नहीं रहता, उसी तरह चित्त में भी अविद्या आदि के आवरणों के छा जाने से उसका स्वरूप स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। सरह मानते हैं कि यदि ये मल चित्त के स्वभाव में प्रविष्ट होते, तो वह कभी निर्मल नहीं हो पाता। इस कथन में बौद्ध दर्शन का सार छिपा हुआ है। इसी के आधार पर समस्त बौद्ध-सम्प्रदाय अपने सिद्धान्त की व्यवस्था करते हैं। इस विषय को आचार्य असंग ने महायानोत्तरतन्त्रशास्त्र में उपमाओं के साथ विस्तार से समझाया है।

चित्त का स्वरूप स्वभावतः निर्मल है। परन्तु उस पर अविद्या आदि आवरणों के आकस्मिक अधिकार के कारण अनादि काल से प्राणी संसार प्रवाह में पतित है। किन्तु वह इन आगन्तुक मलों के शोधन से निर्मल हो सकता है। वही बुद्ध है। इस अवस्था की प्राप्ति के लिये

1. सर्वयोगतत्त्वालोकनामविकलवज्रगीति, स्दे० 2453, पृ० 104
2. चित्तगुह्यदोहा, स्दे० 2443, पृ० 72
3. चित्तं खसमं यदा समसुखं प्रविशति—दोहाकोष, सम्पादक—प्रबोधचन्द्र बागची, कलकत्ता, 1938, पृ० 3

आवरणों का शोधन आवश्यक है। इसके लिये चित्तोत्पत्ति, करुणा, मैत्री, पारमिता आदि प्रतिपक्षों की भावना तथा अभ्यास अनिवार्य है। सभी धर्मों के स्वभाव के ज्ञान के साथ उन पर आरोपित की जाने वाली मिथ्यादृष्टि और आवरणों के परिशोधन में आने वाले विघ्नों की प्रतिपक्ष-भावना अपेक्षित है। नैरात्म्य और शून्यता का ज्ञान भी अनिवार्य है। वस्तुओं पर आरोपित मिथ्यादृष्टि ही सारे क्लेशों को जन्म देती है। यही चित्त को धर्मों के स्वभाव-ज्ञान से वंचित करती हैं। फलस्वरूप चित्त अपनी वास्तविक स्थिति में नहीं आ पाता। सिद्धों ने इस विषय को आकाश की उपमा द्वारा प्रस्तुत करके साधारण जनों को सरल रूप में समझाने की चेष्टा की है।

उक्त विषय को जल के सुन्दर दृष्टान्त द्वारा भी समझाया गया है। जिस तरह जल और ऊर्मि अभिन्न होते हैं, उसी तरह बुद्ध और प्राणी भी अद्वय (अभिन्न) हैं[1]। ध्येय वही है, जो खसम के सन्दर्भ में कहा जा चुका है। बुद्ध और प्राणी में अभिन्नता का अर्थ प्राणियों में विद्यमान चित्त के स्वरूप की निर्मलता से है। इसी विषय की आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान ने दूध की उपमा के द्वारा व्याख्या की है। वे कहते हैं—"जिस तरह दूध में मिश्रित मक्खन, दूध का सार भाग अदृश्य होता है, उसी तरह क्लेश से लिप्त धर्मता का दर्शन नहीं हो पाता। जिस तरह दूध के मन्थन से उसका सार भाग मक्खन दिखाई देने लगता है, उसी तरह क्लेशों के शोधन से धर्मता अत्यन्त विशुद्ध हो जाती है। जिस तरह घट में दीपक जलाने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता, उसी तरह क्लेश रूपी घट में रहकर धर्मता भी दिखाई नहीं देती"[2]।

सिद्धों ने संसार का निरूपण भी ऐसे ही दृष्टान्तों के द्वारा किया है। नागार्जुन ने कहा है—"अहो, मूलरहित यह चित्त सभी धर्मों का मूल है। उससे संसार और निर्वाण रूपी वृक्ष विकसित होते हैं, सुख-दुःख रूपी शाखाओं और पत्तों का विकास होता है और विभिन्न कर्मों का फल परिपक्व होता है[3]। सिद्ध श्री वज्रबलि ने संसार को जल-तरंग की उपमा के द्वारा दर्शाया है। वे कहते हैं—"संसार में सुख नहीं है। वह जल-तरंग की तरह एक दुःख के बाद दूसरे दुःख का अनुभव करता है। वह इस जीवन में जो कुछ भी करता है, वह दुःख का कारण बन जाता है"[4]।

संसार में दुःख और उसके कारणों का उपमाओं द्वारा निरूपण करने के पश्चात् इसके परिहार के उपाय भी उपमाएँ देकर प्रस्तुत किये गये हैं। "वृक्ष रूपी चित्त से उत्पन्न क्लेशों को, जो विशुद्ध मार्ग के कांटे हैं, नैरात्म्य रूपी अग्नि में भस्म करना चाहिये" । वृक्ष रूपी

1. भावनादृष्टिचर्याफलदोहागीतिका, सरह, स्दे० 2345, पृ० 3
2. धर्मधातुदर्शनगीति, दीपङ्करश्रीज्ञान, स्दे०, 2314, पृ० 255.
3 चित्तगुह्यदोहानाम, स्दे० 2443, पृ० 71
4. योगतत्त्वालोकनामविकलवज्रगीति, स्दे० 2453, पृ० 110
5. चित्तगुह्यदोहानाम, स्दे० 2443, पृ० 71

चित्त से उत्पन्न क्लेशों के कारण ही प्राणी संसार में भटकता रहता है। उन क्लेशों को मार्ग में विद्यमान कांटों की तरह नैरात्म्य रूपी अग्नि में भस्म कर देना चाहिये। अग्नि सब पदार्थों को भस्म कर देती है, यह एक लोक देखा सत्य है। इस सत्य का उपमा में प्रयोग करके क्लेश को त्याज्य ठहराना लोगों को संसार से पराङ्मुख करना है। सिद्ध कनकोति कहते हैं—"जिस तरह सांसारिक अग्नि सभी वस्तुओं को भस्म कर देती है, उसी तरह (नैरात्म्य) ज्ञान रूपी अग्नि आत्म-ग्रह को भस्म करके संसार रूपी सारे इंधन का विनाश करती है। अतः जगत् के कल्याण के लिये सुगत यथोचित प्रवृत्त होते हैं"[1]।

तथता की व्याख्या भी वृक्ष की उपमा से की गई है। दारिक-पा ने कहा है—"तथता रूपी वृक्ष के नीचे-ऊपर मूल और शाखा अनुपलब्ध हैं, तो भी वह सदा पुष्प और फल देता है। अहो, यह अद्भुत वृक्ष है"[2]। इस तरह सिद्धों ने अपनी रचनाओं में एक उपमा का अनेक विषयों को समझाने में प्रयोग किया है।

सिद्धों ने धर्मों को शून्य, निःस्वभाव, सदसत्, माना है। स्वप्न, आकाश, कदली, माया मरीचि आदि उपमाओं के प्रयोग से शून्यता को समझाया है। वे अपने मत की स्थापना दृष्टान्तों के प्रयोग से करते हैं और मतान्तरों का खण्डन भी दृष्टान्तों के द्वारा ही करते हैं। सर्वयोगतत्त्वालोक में कहा गया है—"सर्व धर्म कदली की तरह सारहीन है"[3]। "जिस तरह केले का पेड़ सारहीन है, उसी तरह चित्त के तत्त्व को खोजने पर उसमें भी कुछ नहीं मिलेगा"[4]। यहां शून्यता उपमान है, केले का पेड़ उपमा है। इस उपमा द्वारा लेखक ने शून्यता का प्रतिपादन किया है। शून्यता का अर्थ कुछ भी न होना, या एकदम खाली या असत् से लेना उचित नहीं होगा। हर पृथग्जन सहज रूप से यह मानता आ रहा है कि सभी वस्तुएं स्वभाव से सत् हैं। उनमें नित्यता की प्रबल दृष्टि है। जिसके कारण आत्मग्रह, सत्यग्रह, स्वभावसत्ता अथवा अहंभाव जन्म लेता है। जो वास्तविकता को आवृत कर देते हैं। यदि केले के पेड़ के तत्त्व की सार की तरह वस्तु की खोज करें, तो उसकी सत्ता का लाभ नहीं होता। इस परीक्षा के लिये आचार्यों ने रथ, घट आदि वस्तुओं का दृष्टान्त दिया है। जैसे हम पुस्तक की परीक्षा करते हैं, तो स्वभाव-सत् पुस्तक की सत्ता नहीं होती। जब उसकी सत्ता की खोज का प्रश्न उठता है, तब केवल जिल्द पुस्तक है, या उसका हर एक पन्ना पुस्तक है. यह उत्तर नहीं हो सकता। तब पुस्तक क्या है ? यदि इन सबकी उपस्थिति को हम पुस्तक कहेंगे, तो जिल्द, पन्ना आदि को एक साथ रखकर हम

1. चित्तगुह्यदोहा स्दे० 2443, पृ० 68
2. तथतादृष्टि, आचार्य दारिक-पा, स्दे० 2438, पृ० 49
3. सर्वयोगतत्त्वालोकनामविकलवज्रगीति, स्दे०, 2453, पृ० 103
4. चित्तगुह्यदोहा, स्दे० 2443, पृ० 67.

उसे पुस्तक कह सकते हैं ? यह भी उत्तर नहीं हो सकता। यदि कोई पुस्तक स्वभाव से सत् है, तो उसके सृजन के लिये किसी कारण या प्रत्यय की आवश्यकता नहीं होती। सब प्रकार की परीक्षा के पश्चात् यदि कोई पुस्तक व्यवहार में आती है, तो कहना पड़ेगा कि वह हेतु और प्रत्यय के संभार से आई है, वह किसी हेतु और किसी प्रत्यय पर निर्भर है। इस प्रकार सभी धर्मों के प्रतीत्यसमुत्पन्न होने की बात सामने आती है।

शून्यता के प्रतिपादन में सिद्धों ने माया का भी उपमा के रूप में प्रयोग किया है। "मायामय अश्व और हाथी की तरह (वस्तु) आभास के समय स्वभाव से शून्य है"[1]। "सभी धर्म माया के स्वभाव से अतीत नहीं हैं, अतः (वस्तुओं के प्रति) सत्यग्रह करना भ्रम है"[2]।

इस प्रकार बौद्ध सिद्धों ने अपनी रचनाओं में दृष्टान्तों का भरपूर प्रयोग किया है। महासिद्ध सरह, नागार्जुन, अद्वयवज्र, अवधूतिपा, विरूपा, तिल्लोपा, शबरपा इत्यादि अनेक सिद्धों ने अपनी अनुभूतियों के आधार पर दोहा, गीति और विविध उपदेशों की रचना की है, जो तिब्बती अनुवाद में सुरक्षित हैं।

●

1. सर्वयोगतत्त्वालोकनाम-विकलवज्रगीति, स्दे० 2453, पृ० 102
2. सर्वयोगतत्त्वालोकनाम-विकलवज्रगीति—स्दे० 2453, पृ० 103

तन्त्र का स्वरूप एवं आभ्यन्तर भेद–६

—डा० वङ्छुग दोर्जे नेगो—

[उक्त शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के पूर्व के अंकों (4–7,9) में क्रियातन्त्र आदि के स्वरूप, आभ्यन्तर भेद तथा उसकी साधना विधि का संक्षेप में परिचय दिया गया था। यहाँ उसी क्रम में योगतन्त्र के स्वरूप, अभ्युदय और साधना विधि आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।]

योगतन्त्र का अभ्युदय

पद्मवज्र तत्त्वसंग्रह की टीका तन्त्रार्थावतार में योगतन्त्र की देशनाविधि को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि सामान्यतः भगवान् स्व-परार्थ बोधिचित्तोत्पाद द्वारा और आवरणों का क्षय हो जाने से तथा पुण्यसंभार और ज्ञानसंभार से परिपूर्ण होने से वज्रकाय की प्राप्ति कर आकाश-वत् सभी सत्त्वों में व्याप्त होकर भी निरालम्ब निर्विकल्प स्वरूप में स्थित रहते हैं। इस स्थिति में भी बोधि की चर्या करते समय के संस्कार, अर्थात् प्राणियों के हित में की गई प्रतिज्ञा और प्रणिधान के वशीभूत होकर तथागत काय के रूप में भी प्रकट होकर सत्त्वों का हित करते हैं। वे सत्त्वों के अध्याशय के अनुसार क्रमशः और युगपत् उभयरूप में धर्मों की देशना करते हैं।

इस प्रकार शास्ता के तीन रूप है—धर्मकाय, संभोगकाय और निर्माणकाय। धर्म भी तीन प्रकार के हैं—हेतु (लक्षण) यान, बाह्य यान और आभ्यन्तर यान। पार्षद भी तीन प्रकार के है—प्रतीत्य समुत्पन्न, प्रणिधान से उत्पन्न और ज्ञान से उत्पन्न। धर्म की देशना के स्थान भी तीन हैं—नगर, विमानमण्डल और प्रासाद। लोक भी तीन हैं—पाताल लोक, सत्त्व लोक और देव लोक। इसी पृष्ठभूमि में हम यहाँ कुछ चुने हुए योगतन्त्र के ग्रन्थों का परिचय दे रहे हैं।

1. तत्त्वसंग्रह

महायोगतन्त्र तत्त्वसंग्रह की देशना तथागत ने संभोगकाय से देवलोक में की। वहाँ से क्रमशः यह जम्बू द्वीप में आया है। जो इसके भागी (अधिकारी) हैं, उन्हें शास्ता ने यहाँ अधिष्ठित किया है। तन्त्र के संग्रह-अधिष्ठान से यह फला-फूला है[1]। तत्त्वसंग्रह के प्रारम्भ में इस देशना के सम्बन्ध में इस प्रकार का विवरण मिलता है[2]—

---

1. तो० 2502, प० 91 ख–92
2. "एवं मया श्रुतमेक·········बुद्धक्षेत्रेषु इममेव धर्मनयं देशयन्ति स्म" (तत्त्वसंग्रह, पृ० 1, लो० च० संपादित)

पद्मवज्र ने तत्त्वसंग्रह के प्रथम भाग (वज्रधातु) पर एक सुन्दर, स्पष्ट और बृहत्तर तन्त्रार्थावतार नामक ग्रन्थ लिखा है। इसके प्रारम्भ में इन्होंने तत्त्व के अर्थ को स्पष्ट करते हुए तत्त्वसंग्रह के 37 तत्त्वांगों को गिना है। यथा—1. हृदय, 2. मुद्रा, 3. मन्त्र, 4. विद्या, 5. अधिष्ठान, 6. अभिषेक, 7. ध्यान, 8. पूजा, 9. स्वतत्त्व, 10. देवतत्त्व, 11. मण्डल, 12. प्रज्ञा, 13. उपाय 14. हेतु, 15. फल, 16. योग, 17. अतियोग, 18 महायोग, 19. गुह्ययोग, 20. सर्वयोग, 21. जप, 22. होम, 23. व्रत, 24. सिद्धि, 25. सिद्धिसाधन, 26. समाधि, 27. बोधिचित्त, 28. शून्यताज्ञान, 29. आदर्शज्ञान, 30. समताज्ञान, 31. प्रत्यवेक्षणाज्ञान, 32. कृत्यानुष्ठानज्ञान, 33. धर्मधातु, विशुद्धज्ञान, 34. आकर्षण, 35. स्थापन, 36. बन्धन तथा 37. वशीकरण। इन 37 तत्त्वों की साधना-विधियों का यहाँ संग्रह किया गया है, अतः इस तन्त्र का तत्त्वसंग्रह नाम सार्थक है[1]। पद्मवज्र का कहना है कि इन 37 तत्त्वों को हम पुनः हृदय, मुद्रा, मन्त्र और विद्या तत्त्वों में संगृहीत कर सकते हैं[2]।

इस ग्रन्थ के चार भाग हैं—1. वज्रधातु भाग, 2. त्रिलोकविजय भाग, 3. (त्रिलोक) सकलजगत् विनय भाग, 4. सर्वार्थसिद्धि भाग। प्रत्येक भाग में छः छः मण्डल (पटल) हैं। यथा—1. वज्रधातु भाग में (क) वज्रधातु मण्डल, (ख) वज्रगुह्य वज्रमण्डल, (ग) वज्रज्ञान धर्ममण्डल, (घ) वज्रकाय कर्म मण्डल, (ङ) चतुर्थमुद्रा मण्डल और (च) एकमुद्रा मण्डल।

2. त्रिलोकविजयमण्डल भाग में—(क) त्रिलोकविजय महामण्डल, (ख) क्रोधगुह्यकर्ममुद्रा मण्डल, (ग) वज्रकुलधर्मज्ञान समयमण्डल, (घ) त्रिलोकविजयक्रम मण्डल, (ङ) त्रिलोकविजय चतुर्थ मण्डल और (च) एकमुद्रा मण्डल।

3 सकलजगत् विनय भाग में—(क) सकलजगत् विनय महामुद्रा मण्डल, (ख) पद्म गुह्यमुद्रा मण्डल, (ग) ज्ञानमण्डल, (घ) कर्ममण्डल, (ङ) चतुर्थमुद्रा मण्डल तथा (च) सकल जगत् एक मुद्रामण्डल।

4. सर्वार्थसिद्धि भाग में—(क) सर्वार्थसिद्धि महामण्डल, (ख) रत्नगुह्य मण्डल, (ग) ज्ञानमण्डल, (घ) कर्ममण्डल, (ङ) चतुर्थ मुद्रामण्डल, (च) सर्वार्थसिद्धि एकमुद्रा मण्डल।

उपर्युक्त छः छः मण्डलों की व्यवस्था आनन्दगर्भ रचित तत्त्वसंग्रह की टीका तत्त्वालोक[3] और मञ्जुश्रीमित्र के कोसलालंकार[4] के अनुसार यहाँ दी गई है। ये दो तत्त्वसंग्रह की सबसे बृहद् और सुन्दर टीकाएँ मानी जाती हैं।

---

1. तो० 2502, पृ० 93
2. तो० वहीं, पृ० 93 ख।
3. तो० 2510, पृ० 1-317, और 2510, पृ० 1-49
4. तो० 2503, पृ० 1-202, और 2503, पृ० 1-245

तत्त्वसंग्रह में सर्वप्रथम निदानवस्तु (परिवर्त) में दो प्रयोजन स्वार्थ और परार्थ से युक्त वैरोचनपद की चर्चा की गई है, जिससे साधक उस पद की प्राप्ति हेतु तीव्र इच्छा करे। उसके पश्चात् विशेष रूप से उस पद की प्राप्ति के उपाय के साथ लौकिक और लोकोत्तर सिद्धियों की प्राप्ति का मार्ग भी वर्णित है। यद्यपि तथागत शब्द का प्रयोग सभी पंचतथागत कुलों में होता है, लेकिन जब मात्र तथागतकुल शब्द का प्रयोग करते हैं, उस समय वैरोचन कुल के बोधिसत्त्वों के लिये ही यह शब्द प्रयुक्त होता है, अन्य चार कुलों के बोधिसत्त्वों के लिये नहीं[1]। इस तन्त्र के प्रथम अंग (भाग) में तथागत कुलों से सम्बद्ध मार्ग का प्रतिपादन हुआ है। उसी प्रकार द्वितीय में वज्रकुल, अर्थात् अक्षोभ्यकुल का, तीसरे में पद्मकुल, अर्थात् अमिताभकुल का और चौथे में सभी प्राणियों का प्रयोजन सिद्धि करने वाले रत्नकुल, अर्थात् रत्नसंभव से सम्बद्ध मार्गों का प्रतिपादन हुआ है। इस प्रकार यहाँ चार ही कुल वर्णित हैं। प्राणियों की अर्थ-सम्पत्ति के कर्ता रत्नकुल और कार्य को सम्पन्न करने वाले कर्मकुल, अर्थात् अमोघसिद्धि को यहाँ एक ही रूप में संगृहीत कर लेने से चार भागों में ही पाँचों कुल समाहित हो जाते हैं।

मूलतन्त्र तत्त्वसंग्रह के साथ उत्तरतन्त्र और उत्तरोत्तरतन्त्र भी उपलब्ध होते हैं, जिसमें चारों अंगों में प्रतिपादित परम पद की प्राप्ति के उपायों की विस्तार से व्याख्या की गई है। जो अंश मूलतन्त्र में अस्पष्ट एवं अपूर्ण हैं, उनकी पूर्ति यहाँ की गई है। उत्तरोत्तरतन्त्र में विस्तार से स्पष्ट किया गया है कि योगतन्त्र का जो साधक आभ्यन्तर योग की साधना करने में अपने को असमर्थ समझता है, उनके लिये जप, पूजा आदि बाह्य चर्याओं का विधान है। मूलतन्त्र के चारों अंगों में जिन लौकिक सिद्धियों की प्राप्ति के मार्ग की व्यवस्था अस्पष्ट और अपूर्ण है, उसे भी यहाँ स्पष्ट करते हुए परिपूर्ण किया गया है। यहाँ योगतन्त्र के उपविभाग उत्तरतन्त्र के सम्बन्ध में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या योगतन्त्र का एक पक्ष क्रियातन्त्री कहलायेगा ? क्योंकि यह बाह्य पवित्रता पर ध्यान देता है और जप आदि भी करता है। इसका उत्तर यह है कि सामान्यतः चार तन्त्रों का मोटा प्रस्थानभेद है सही, लेकिन इनमें कोई परस्पर विरोध नहीं हो सकता। जैसे गुह्यसमाज के विनेय जन को स्पष्ट करते हुए चन्द्रकीर्ति कहते हैं कि[2] जो साधक उत्पत्तिक्रम में पूर्णता प्राप्त कर लेने के पश्चात् साधारण सिद्धि की प्राप्ति के लिये प्रयास नहीं करता और निष्पन्नक्रम की भावना करते हुए परम पद की प्राप्ति के लिये ही प्रयास करता है, ऐसा साधक यहाँ रत्नसदृश योग्य पात्र कहलाता है। जो साधक उत्पत्तिक्रम में दक्षता प्राप्त कर साधारण सिद्धियों की प्राप्ति के लिये प्रयास करता है, वह अधम (गौण) पुण्डरीक साधक कहलाता है। इस प्रकार जैसे यहाँ प्रधान और गौण साधक उपलब्ध हैं, योगतन्त्र में भी यही स्थिति है।

---

1. सामान्यतन्त्र खेड्रुब जे, पृ० 566 जि० 8
2. पुण्डरीकोत्पली चैव पद्म चन्दन एव च।
   चत्वारः पुद्गला ह्येते सत्रव्याख्यानपुद्गलाः ॥ (प्रदीपोद्योतन, पृ० ४)

पुनः यहाँ प्रश्न उठता है कि तन्त्र के चारों भागों में एक ही साधक की वैरोचन आदि परम पद की प्राप्ति का मार्ग वर्णित है अथवा विभिन्न चार प्रकार के साधकों का ? इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट करते हुए परमाद्यकल्पतन्त्र[1] में कहा गया है कि पंच तथागतों की साधना करने वालों में, जिनमें त्रिविध दोष (काम, क्रोध, मोह) समान रूप से विद्यमान है, उनके लिये तथा महारागियों के लिये प्रथम भाग, अर्थात् धर्मधातु मण्डल, महाद्वेषियों के लिये द्वितीय भाग, अर्थात् त्रिलोकविजय मण्डल, महामोहियों (मिथ्या दृष्टि) वालों के लिये तीसरा भाग, अर्थात् सकल जगत् विनयमण्डल तथा महाकृपणियों के लिये सर्वार्थसिद्धि मण्डल की देशना की गई है। आचार्य बुद्धगह्य भी इस प्रस्थान को स्वीकारते हैं। कुनगाञिङ्पो ने भी सामान्य लघुतन्त्र[2] में प्रायः उसी प्रकार की बात कही है। साधक अपने से कुछ भी निर्णय लेने में असमर्थ होकर जैसा-जैसा गुरु मिले, उसके उपदेशों का अनुसरण करता हुआ कभी रागयुक्त मार्ग को, कभी द्वेषयुक्त को, तो कभी बाह्य शुद्धि आदि को ही धर्म मानकर चर्चाएँ करता है। उनको यथावत् मार्ग में प्रविष्ट कराने के लिये बुद्ध ने योगतन्त्र की देशना की थी। 1. जैसे योगतन्त्र के प्रथम भाग में रागियों को अनुगृहीत करने के लिये देवों के वर्ण, आभरण, परिधान आदि को लोहित वर्ण में दिखाते हुए प्रधान रूप से साधनाविधि बताई गई है। 2. द्वितीय भाग में द्वेषप्रधान साधकों को अनुगृहीत करने के लिये भयानक, रौद्र, कृष्ण वर्ण में देवों का रूप और साधनापद्धति आई है। 3. सकलजगत् विनेय भाग में मोहप्रधान साधकों को अनुगृहीत करने के लिये देवों का वर्णन भी श्वेत, शान्त-स्वभाव में है और परिधान, आभूषण आदि भी श्वेत दिखाये गये हैं। चौथे भाग में समान रूप से तीनों दोषों से युक्त साधक के लिये देवों का वर्ण भी रंग-बिरंगे स्वभाव और आभरण आदि भी विभिन्न प्रकार के दिखाये गये हैं। बुस्तोन ने भी ऐसा ही कहा है[3]।

आनन्दगर्भ ने योगतन्त्र के इन चार भागों की स्वभाव, विपाक, सम्भोग और निर्माणकाय में तथा आदर्शज्ञान, समताज्ञान, प्रत्यवेक्षणाज्ञान, कृत्यानुष्ठानज्ञान में और बोधिचित्त, दानपारमिता, प्रज्ञापारमिता और वीर्यपारमिता की प्रधानता को क्रमशः चार भागों में एक साथ जोड़कर व्याख्या की है।

कुल के अनुसार 1. प्रथम भाग के सभी देवता तथागत के हृदय चन्द्रमण्डल से उत्पन्न है। 2. दूसरे भाग के सभी देव वज्र हूँ, अर्थात् वज्रकुल के हैं, क्योंकि वज्र हूँ कृत, क्रोध वज्रचित्त से विकुर्वित है और देवों के आयुध भी वज्रमाला, वज्रपट आदि हैं। 3. तीसरा भाग पद्मकुल का है। इस भाग के सभी देवता अवलोककितेश्वर के चित्तवज्र से निर्मित किये जाते हैं और सभीं देवों के आयुध पद्मवज्र, पद्मवज्रमाला और

1. तो० 487, प० 1 50–173
2. सक्या काबुम, जि० 1, पृ० 5
3. सामान्यतन्त्र।

पद्मवज्रपट आदि होते हैं। 4. चौथे भाग के सभी देव आकाशगर्भ चित्तवज्र से विकुर्वित हैं, अतः यह रत्नकुल के कहलाते हैं। यद्यपि देव स्वयं अपने में क्रोधरूप या विभिन्न रूपों वाले नहीं होते, क्योंकि परम पद की अवस्था तो परम शान्त होती है। मात्र विनेय जनों के लिये प्रयोजनवश ये विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। जैसे कि तत्त्वसंग्रह में कहा है—

अहो महोपायमहं बुद्धानां करुणात्मनाम्।
यत्सत्त्वार्थतया शान्ता रौद्रत्वमपि कुर्वते॥ (पृ० 13)

इन सबका अभिप्राय यह नहीं है कि किसी एक साधक को चारों भागों की साधना करने पर ही विशुद्ध पद की प्राप्ति होगी, अपितु प्रत्येक भाग में कहीं कोई एक साधनापद्धति का अनुशीलन करने से भी इस पद की प्राप्ति हो सकती है[1]।

योगतन्त्र की साधना त्रिध्यान (अधियोग ध्यान, मण्डलराजाग्र ध्यान और कर्मराजाग्र-ध्यान) से की जाती है। तत्त्वसंग्रह के प्रत्येक भाग में उत्तम, मध्यम और मन्द प्रकृति के साधकों के लिये विस्तार, मध्यम और संक्षेप रूप में तीन प्रकार की साधना पद्धति उपदिष्ट है। आनन्दगर्भ ने तत्त्वालोक में कहा है कि जो साधक पद्मकुल (सर्वजगत् विनय) की विस्तार से साधना करना चाहते हैं उनके लिये पद्मकुल स्वभाव महामण्डल धारणीमण्डल, धर्ममण्डल और कर्ममण्डल हैं[2]। जो मध्यम पद्धति को पसन्द करते हैं, उनके लिये चार मुद्राओं की व्यवस्था है, तथा जो अतिसंक्षेप में भावना करना चाहते हैं, उनके लिये एक मुद्रामण्डल की देशना हुई है[3]।

तत्त्वसंग्रह में कर्ममुद्रा आदि चार मुद्राओं को चार कुलों के साथ जोड़कर व्याख्या की गई है। काय महामुद्रा वैरोचनकुल की है, चित्त समयमुद्रा अक्षोभ्यकुल की है, वाक् धर्ममुद्रा अमिताभकुल की है, कृत्य (कर्म) ज्ञान मुद्रा है, जो रत्नसंभवकुल की है। विभाजन का यह आधार भी मात्र प्रधानता को लेकर है। बुद्धगुह्य तन्त्रार्थावतार में कहते हैं कि काय के बिना चित्त नहीं हो सकता और चित्त के बिना वाक्। अतः सभी कुलों में चारों मुद्राएँ सन्निहित हैं।

सारांश में हम कह सकते हैं कि तत्त्वसंग्रह के किसी एक भाग, उसके एक उपांग की या चारों भागों की साधना कर बोधि को प्राप्त किया जा सकता है। इसी लिये विद्वानों ने तत्त्व-संग्रह के चारों भागों को अलग-अलग निकाल कर स्वतन्त्र रूप से भी टीकाएँ लिखी हैं। इनमें

---

1. तो० 2501 बुद्धगुह्य रचित प्रथम भाग पर टीका, प० 1–91
   तो० 2516 आनन्दगर्भ की प्रथम भाग पर 11, प० 1–50
   तो० 2519 त्रिलोकविजय पर आनन्दगर्भ की टीका, प० 67–110
2. तो० 2510, प० 81,
3. तो० वहीं, प० 87 ख,

वज्रधातु भाग पर बुद्धगुह्य का तन्त्रार्थावतार, त्रैलोक्यविजय पर आनन्दगर्भ की वृत्ति और चारों भागों को विस्तार, मध्यम और सारांश में चाहने वालों के लिये ऊपर कहे अनुसार पूरे ग्रन्थ को तीन भागों में बाँट कर लिखी गई दो जिल्दों में तत्त्वालोक[1] नामक व्याख्या प्रमुख है। तत्त्वालोकव्याख्या तत्त्वसंग्रह की सबसे विशाल और स्पष्ट टीका मानी जाती है।

2. वज्रशेखरतन्त्र[2]

यद्यपि बुस्तोन आदि सभी विद्वानों का मत है कि वज्रशेखर योगतन्त्र का व्याख्यातन्त्र है और इसमें मूलतः चार प्रधान परिच्छेद हैं। यथा—1. सर्वतथागत गुह्यसूत्रेश्वरनाम पटल, 2. सर्वतथागतगुह्यतथागत कुलपटल, 3. त्रिलोकविजयव्याख्या पटल तथा 4. तथागतवज्रकुलतत्त्व-व्याख्या पटल। षड्दशतत्त्व, व्याख्यातत्त्वविंशति, होमगुह्यव्याख्या आदि अनेक अवान्तर परिच्छेद हैं। वज्रशेखर को देखने से लगता है कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ व्याख्यातन्त्र नहीं है, क्योंकि इसका सर्वतथागतगुह्यसूत्रेश्वर नामक प्रारम्भिक पटल उत्तरतन्त्र की व्याख्या शैली के अनुसार प्रश्नोत्तर के रूप में मिलता है। जैसे निर्विकल्प धर्म का अर्थ क्या है? पुनः वहाँ विकल्पों के प्रतिपादन का अभिप्रायः क्या है? साधनार्थ क्या है? क्यों यह उत्तरतन्त्र है? वज्रचण्ड क्यों है? वज्रधर कितने होते हैं? आदि अनेक प्रश्न एक बार में ही संक्षेप में पूछे गये हैं और फिर दुबारा विस्तार से प्रश्न किये गये हैं। उसके बाद प्रश्नोत्तर के रूप में, जैसे वज्रधर कितने होते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में कहा है कि सर्व दिशाओं में व्याप्त होने से एवं धर्मधातु सदृश अनन्त होने से वज्रधर भी अनन्त होते हैं। इसी ग्रन्थ में ये सब उत्तर क्यों हैं और यह तन्त्र क्यों है? इस तरह के वाक्यों को देखने से प्रथम पटल उत्तरतन्त्र प्रतीत होता है या उत्तरतन्त्र की देशना शैली में उपदिष्ट व्याख्यातन्त्र, क्योंकि उत्तरतन्त्र की देशना का अलग से निदान परिवर्तन नहीं होता। यहाँ भी "अथ राजा वज्रधरः" से ग्रन्थ प्रारम्भ किया गया है। यह भी इससे सिद्ध होता है कि तत्त्वसंग्रह की देशना के बाद उसी मण्डल में यह भी उपदिष्ट है। पार्षदों द्वारा प्रश्न करने पर उत्तर के रूप में उत्तरतन्त्र की देशना भगवान् करते हैं, जैसे कि गुह्यसमाज के उत्तरतन्त्र की। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वज्रशेखर का प्रथम पटल उत्तरतन्त्र के रूप में और शेष भाग व्याख्यातन्त्र के रूप में उपदिष्ट हुए हैं।

3. त्रिलोकविजयमहाकल्प

वज्रपाणि आकाश मार्ग से उतर कर भगवान् की साष्टांग वन्दना करते हैं और लोक में स्थित क्रूर और दुरात्माओं को समय और संवर में स्थापित करने की विधि का उपदेश करने के लिये जब निवेदन करते हैं, तब त्रिलोकविजयमहाकल्प की देशना भगवान् सुमेरु पर्वत के ऊपर मणिरत्नाग्र नामक प्रासाद में अनन्त देव, नाग, यक्ष, गन्ध, किन्नर, भूत, पिशाच आदि

1. तो० 2510,

2. तो० 480 पृ० 142–274

के साथ विहार करते समय करते हैं[1]। इसमें त्रिलोकविजयमहाकल्प, वज्रहूँकारनामकल्प, तथागतकल्प, वज्रमहाचक्रविधिविस्तार, कर्ममण्डलविधि, वज्रपाणिकल्प, अवलोकितेश्वर-कल्प, गगनगर्भकल्प, गगनकोषकल्प, कर्मप्रसरकल्प, विद्यामन्त्रीमहाकल्प, वज्रक्रोधकल्प, कर्मसमूहकल्प, कर्मदूतीकल्प, सेवककल्प, कर्मवज्रसमूहमातृकल्प, कर्मवज्रीदूतीकल्प और कर्मसेवककल्प नामक विभाग हैं। यहाँ तक यह मूलतन्त्र है[2]। उसके बाद इसी ग्रन्थ में वज्रपाणि द्वारा भगवान् से तथागत कैसे उत्पन्न होते हैं? वज्र किससे उत्पन्न होता है? आदि प्रश्न पूछे गये हैं। उसके उत्तर के रूप में भगवान् ने जो कुछ कहा है, उसे उत्तरतन्त्र कहते हैं[3]।

4. **सर्वदुर्गतिपरिशोधनकल्प**

इस तन्त्र की देशना तथागत ने देवस्थान के नन्द नामक उपवन में की थी[4]।

5 **परमाद्यतन्त्र**

परमाद्यतन्त्र की देशना भगवान् तथागत ने कामधातु के परनिर्मितवशवर्तिन् में देवराज के प्रासाद में बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, मञ्जुश्री, आकाशगर्भ आदि को की थी[5]। इसमें तथागतकल्प, त्रिलोकविजयकल्प, मुष्टिकल्प, वज्रचक्रकल्प, आकाशगर्भकल्प, वज्रयक्षकल्प, कुलसंग्रहकल्प, बाह्याचारवज्रकुलमण्डलकल्प और महासुखवज्र-अमोघसमयकल्प नामक 9 परिच्छेद हैं।

6. **वज्रगर्भालङ्कारतन्त्र**

इस तन्त्र की भी देशना भगवान् तथागत ने सर्वतथागतों द्वारा अधिष्ठित अनन्त बुद्धों के प्रादुर्भावस्थान वैरोचनहृदय प्रभास्वर विमान तथागतस्थान वज्रगर्भालंकार में अनन्त बोधिसत्त्व महासत्त्वों की परिषद् में की थी[6]। महामण्डलविधि, जलदेवमण्डलविधि, अग्निदेवमण्डलविधि, वायुदेवमण्डलविधि, जपतत्त्वविधि, स्तोत्रविधि, तथागतकाय-सिद्धोपायिका, ये सब इसके प्रथम भाग के विषय हैं। द्रव्यसाधनोपायिकाविधि, वाक्-साधनोपायिका, मन्त्रसाधनोपायिका, सर्वाभास-उष्णीषसाधनोपायिका, क्लेशवज्रसाधनोपायिका, सर्वतथागतमुष्टिसाधनोपायिका, सर्वतथागतोष्णीषसाधनोपायिका, श्वेतच्छत्रसाधनोपायिका, सर्वोष्णीषसाधनोपायिका, मञ्जुश्रीसाधनोपायिका, जगदीश्वरसाधनोपायिका, वज्रधरसाधनो-पायिका, मैत्रेयसाधनोपायिका, आकाशगर्भसाधनोपायिका, समन्तभद्रोपायिका, सागरमति-साधनोपायिका, रत्नसंभवसाधनोपायिका, ये सब बुद्ध और बोधिसत्त्वों की साधनोपायिकाएँ हैं। यमान्तकसाधनोपायिका, क्रोधकणसाधनोपायिका, हयग्रीवसाधनोपायिका से क्रोधमण्डल सम्पन्न

---

1. तो० 482. पृ० 10. 2. तो० 482 पृ० 57 तक। 3. तो०, वही, पृ० 57 तक।
4. तो० 485, पृ० 96-146. 5. तो० 487, पृ० 150-173. 6. तो० 490, पृ० 1-82.

होता है। इसके साथ बुद्धलोचनमुद्रासाधनोपायिका, पण्डारसाधनोपायिका, भ्रुकुटिसाधनोपायिका, मामकीसाधनोपायिका, वज्रमालामयीसाधनोपायिका, चुन्दासाधनोपायिका और मन्त्रतत्त्व से गुह्यमण्डल सम्पन्न होता है। इसके आगे वज्ररत्नमण्डल, नाभिचक्र, धर्मचक्रमण्डल, गगनकोशमण्डल, वज्रजिनमण्डल, सुवज्रमण्डल आदि अनेक मण्डल-विधियाँ बताई गई हैं। यहाँ अन्त में 32 लक्षणों और 80 अनुव्यंजनों की नामावली और उनकी व्याख्या भी दी गई है।

7. कायवाक्चित्तगुह्यभूतालंकारतन्त्र[1]

इस तन्त्र को भी बुस्तोन ने योगतन्त्र की सूची में रखा है[2]। इसके ज्ञानश्रेष्ठमण्डल, गुह्यालंकारमहामण्डल और कायवाक्चित्तगुह्य नामक तीन भाग हैं।

8. अभिगुह्य-मणितिलकतन्त्र

इसकी देशना भगवान् ने अकनिष्ठ भुवन में देवराज के गृह में निवास करते समय वज्रपाणि, अवलोकितेश्वर, आकाशगर्भ, वज्रमुष्टि आदि 99 कोटिशत बोधिसत्त्वों के द्वारा गुह्यतिलक के उपदेश हेतु निवेदन करने पर की थी[3]। इसमें वज्रतिलकप्रत्यवेक्षण, देवीतन्त्र-विधि, सर्वतत्त्वरहस्यविधिविस्तार, परमतत्त्वरहस्यतिलक नामक चार भाग हैं।

9. पञ्चविंशतिप्रज्ञापारमितामुख

इसकी देशना भगवान् ने सुमेरु पर्वत के ऊपर देव, देवपुत्र, असुर, वायुदेव, गरुड़, नाग, यक्ष, किन्नर, राक्षस, विद्याधर, भूत, विनायक, पिशाच और प्रत्यक्ष-परोक्ष अनन्त मातृसमूहों के साथ विहार करते समय की थी। वज्रपाणि आकाश से उतर कर भगवान् की परिक्रमा कर बैठ जाते हैं। उसी समय वज्रपाणि को गुह्य-अधिपति के नाम से सम्बोधित करते हुए ॐ बोधिचित्त वज्रप्रज्ञापारमितामुख है, ॐ समन्तभद्रचर्या प्रज्ञापारमितामुख है, आदि ॐ अक्षर से प्रारम्भ करते हुए प्रज्ञापारमिता को 25 विशेषणों से अलंकृत कर उसे मुख, अर्थात् मुक्ति का द्वार बता कर देशना की थी[4]।

इस प्रकार योगतन्त्र के अनेक ग्रन्थ हैं जिन्हें मूलतन्त्र, व्याख्यातन्त्र, उत्तरतन्त्र और सभागीयतन्त्र के रूप में जाना जाता है। डोगोन छोसरग्यलफगसपा ने खसमतन्त्र[5] और सुप्रतिष्ठिततन्त्र[6] को भी योगतन्त्र में रखा है[7]।

1. तो० 492, पृ० 83–119
2. जि० 24 पृ० 985
3. तो० 493, पृ० 120
4. तो० 491 पृ० 83
5. तो० 386 पृ० 99–202
6. तो० 486 पृ० 146–150
7. तन्त्र आगम सूची. साक्या साहित्य संग्रह, जि० 7, पृ० 137. जापान से प्रकाशित।

योगतन्त्र का स्वरूप

गम्भीरार्थ परमार्थ सत्य और उदारार्थ संवृति सत्य, अर्थात् गम्भीरोदार एवं आभासशून्य अद्वय स्वरूप में प्रतिष्ठित करने से यह योगतन्त्र कहलाता है। योगतन्त्र में देह को कायमुद्रा से, वाक् को धर्ममुद्रा से, चित्त को समयमुद्रा से तथा कृत्यों को इष्टदेव की कर्ममुद्रा से मुद्रित कर साधक ध्यानभावना द्वारा तथता को, परमपद को प्राप्त करता है। बुस्तोन का कहना है कि योगतन्त्र में बोधि-प्राप्ति की विधि का मार्गीकरण तो होता है, क्योंकि पंचाभिसंबोधि द्वारा देवभावना की जाती है, लेकिन यहाँ अनुत्तरतन्त्र के समान जन्म-मृत्युसदृश उत्पत्ति और निष्पन्नक्रम की भावना-विधि नहीं होती[1]। ज्ञानसमुच्चय में योगतन्त्र के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भगवान् ने कहा है कि विद्या-देवियों के साथ मण्डल में स्थित होकर हास, पाण्याप्ति आदि राग-क्रियाओं का अनुकरण करते हुए तत्त्व में स्थित होने वाला तथा मण्डलतत्त्व आदि दस तत्त्वों[2] का अनुशीलन करने वाला उभय(चर्या और योग)तन्त्री या योगतन्त्री कहलाता है[3]। त्रिनयप्रदीप में भी कहा है कि अन्य (योगतन्त्री) अद्वयतत्त्व की भावना में अत्यन्त रुचि रखते हैं। वे विभिन्न बाह्य चर्याओं को चित्त के विक्षेप का कारण मानते हैं और अध्यात्म पर जोर देते हैं। इसलिये वे चर्यातन्त्री कहलाते हैं[4]। यहाँ चर्यातन्त्री शब्द का अभिप्राय योगतन्त्री से है[5]।

योगतन्त्र को कुल के अनुसार पाँच भागों में विभक्त किया जाता है। यथा—(1) तथागत-कुल, (2) वज्रकुल, (3) रत्नकुल (4) धर्मकुल और (5) कर्मकुल। विस्तार करने पर इसके 100 भेद होते है[6]। प्रत्येक कुल के तथागत तथागतकुल और तथागतकर्मकुल के नाम से पाँच प्रकार के होते हैं। इसो प्रकार वज्रकुल आदि को भी जानना चाहिये। पाँच-पाँच के भेद से इन 25 कुलों को पुनः हृदय, मुद्रा, मन्त्र और विद्यामन्त्र कुल के भेद से विभक्त करने पर $25 \times 4 = 100$ कुल हो जाते हैं[7]। हृदय, मुद्रा, मन्त्र आदि को स्पष्ट करते हुए तत्त्वसंग्रह में कहा है[8]—

मनीषितविधानैस्तु सिध्यते तु मनीषितम्।
समाधिसाधनो हृत्स्थो हृदयस्तेन चोच्यते ॥ 1 ॥

---

1. सामान्यतन्त्र, जि० 14.
2. मण्डलतत्व, मन्त्रतत्त्व, मुद्रातत्व, आत्म(स्व)तत्त्व देश आदि रक्षा तत्त्व, देव आवाहन, जाप, भावनातत्त्व बाह्य और आभ्यन्तरात्मक होमतत्त्व, स्फुरण एवं संहार (संकुचन) तत्त्व।
3. तो० 447 प० 285. 4. तो० 370 7 प० 626.
5. पद्मकरपो साहित्य संग्रह, जि० 6 प० 3 ख, दिल्ली से प्रकाशित, सन् 1974
6. तो० 480 वज्रशेखर प० 150. 7. ज्ञेयकोश, जि० 2, पृ० 602
8. तत्त्वसंग्रह, पृ० 206.

दुरतिक्रमो यथाभेद्यो राजमुद्राग्रशासनः ।
महात्मचिह्नविश्वस्तु तथा मुद्रेति कीर्तिता ॥ 2 ॥
न अतिक्रमणीयो हि दुर्भेद्यो गुह्य एव च ।
मन्त्र्यते गुह्यसिद्धचर्थं मन्त्रस्तेन निरुच्यते ॥ 3 ॥
अविद्याविप्रणाशाय वाग्विद्योत्तमसिद्धये ।
विद्यते वेदनासिद्धिस्तेन विद्या प्रकीर्तिता ॥ 4 ॥

वज्रशेखरतन्त्र में कहा है कि विषैले प्राणियों और पापियों से रक्षा करने के कारण इसे मुद्रा कहते हैं। मन्त्र के उच्चारण से दुष्ट प्राणियों के उच्चाटन के साथ निजी क्लेश का नाश होता है। मन्त्र-जप से साधक बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों से अधिष्ठित होता है, अतः यह मन्त्र है। विद्याराज्ञी दोषों का क्षय कर तत्त्व का सक्षात्कार कराती है, अतः इसे विद्या कहते हैं। धारणी (हृदय) सभी धर्मों के आश्रय अकुशल का नाश कर कुशल को ग्रहण करती है, अतः इसे धारणी कहते हैं[1]।

पद्मकरपो ने कहा है कि हृदय कायमुद्रा है, काय का केन्द्रबिन्दु हृदय है। महामुद्रा में एकाग्र होना ध्यान है। हृदय में स्थित होकर सिद्धि की प्राप्ति की जाती है, अतः यह हृदय है। अथवा इष्टदेव का हृदय रूपी बीजाक्षर ही हृदय कहलाता है। तथागतों की चर्याओं का साधक को अनुकरण करना पड़ता है। साधक उनका अतिक्रमण नहीं कर सकता। अतः यह मुद्रा है। मन्त्र मन को दूषित होने से बचाता है, अतः इसे मन्त्र कहते हैं। विद्या से अविद्या का नाश होकर ज्ञान का उदय होता है, अतः इसे विद्या कहा है[2]।

हृदय-महामुद्राप्रधान कायमण्डल, मुद्रा-समय मुद्रा प्रधान धारणी मण्डल, गुह्यमन्त्रधर्म मुद्रा प्रधान धर्ममण्डल और विद्या-कर्ममुद्राप्रधान कर्ममण्डल है। धारणीमण्डल का अभिप्राय देवी धारणियों का आयुध के रूप में मण्डल में न्यास करना है[3]।

ये सब भेद संक्षेप में प्रज्ञा और उपाय में सन्निहित हो जाते हैं। बुस्तोन ने कहा है कि मन्त्रकुल का अभिप्राय उपाय (पुरुष) पितृप्रधान और विद्यामन्त्र (प्रज्ञा) का मातृ प्रधान कुल है। इन दोनों को, अर्थात् प्रज्ञा और उपाय को अद्वयतत्त्व में लीन स्मृति और संप्रजन्य से युक्त कर स्थित होने से चित्त को दूषित होने से बचाया जाता है। इसलिये एक मन्त्रकुल में ही सभी कुल सम्मिलित हो जाते हैं। अज्ञान के प्रतिपक्ष अथवा विपरीत ज्ञान के उत्पन्न होने से सभी दोषों का क्षय और गुणों की प्राप्ति होती है। अतः इसे विद्याकुल भी कह सकते हैं[4]।

---

1. तो० 480 वज्रशेखर, प० 155.
2. पद्मकरपो साहित्य संग्रह, जि० 6, पृ० 66–69.
3. बुस्तोन साहित्य संग्रह, जि० 14, पृ० 975.
4. वहीं, पृ० 963.

ज्ञानश्रीविरचित द्वयन्तनिवारण में कहा गया है कि पुरुष देव गुह्यमन्त्र है। स्त्रीदेव (देवी) विद्यामन्त्र है। जो मन्त्र पितृ और मातृ दोनों में प्रयुक्त होता है, वह धारणी मन्त्र कहलाता है[1]।

बुस्तोन ने तथागतकुल को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सर्वतथागत प्रकृति वज्रधातु अधिगमनज्ञान बोधिचित्तस्वरूप प्रकृतिपरिशुद्ध धर्मधातुज्ञान ही वैरोचन, अर्थात् तथागत कुल है। सर्व तथागतों की अनुज्ञा के अनुरूप उपाय स्वपर प्राणियों की इच्छा के अनुसार प्रकट होने वाला आदर्शज्ञान अक्षोभ्य स्वभाव वज्रकुल है। तथागतों पारमितास्वरूप सत्त्वों की मनोकामना को पूरा करने वाला समताज्ञान रत्नसंभव रत्नकुल है। तथागतों का प्रज्ञास्वरूप प्रत्यवेक्षणाज्ञान पद्मकुल है, तथागतों का वीर्यस्वरूप सर्वसिद्धि कृत्यानुष्ठानज्ञान स्वभाव कर्मकुल है[2]।

योगतन्त्र में भी प्रज्ञा मातृतन्त्र और उपाय पितृतन्त्र है, ऐसा काय-वाक्-चित्तगुह्यालंकार-व्यूहतन्त्र में आया है। बुस्तोन ने भी लघुसामान्यतन्त्र में कहा है कि तत्त्वसंग्रह उपाय तन्त्र है। यह दस तत्त्वों का प्रधान रूप से निरूपण करता है, अतः पितृतन्त्र है। परमाद्यतन्त्र और पंचविंशतिप्रज्ञापारमिता आदि ग्रन्थ प्रज्ञाप्रधान मातृतन्त्र हैं[3]। इस प्रकार योगतन्त्र के भी पितृ और मातृतन्त्र नामक दो विभाग हो सकते हैं। इन दोनों प्रकार तन्त्रों का स्वरूप अनुत्तर-तन्त्र से बिलकुल भिन्न है। यहां आभासशून्यता मात्र है, जब कि अनुत्तरतन्त्र में महासुख-शून्यता। आभास शून्यता भी यहाँ मनोमय मात्र है। अनुत्तरतन्त्र में वायु के अवधूती में प्रवेश और स्थितिलाभ के बाद उत्थान विधि द्वारा युगनद्धकाय में प्रकट होना ही आभास-शून्यता है।

सारांश यह है कि योगतन्त्र में क्रिया और चर्यातन्त्र की अपेक्षा विस्तार है और स्पष्ट रूप में पंचाभिसंबोधि की भावना के द्वारा तथागतकुल, क्रोधकुल, वज्रकुल, पद्मकुल आदि की स्वतन्त्र रूप से साधना करने की विधि उपदिष्ट है।

(क्रमशः)

---

1. तो० 3714, प० 115-120
2. बुस्तोन, जि० 14
3. वहीं, पृ० 974

सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान : विहगावलोकन

—व्रजवल्लभ द्विवेदी—

["सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान" के नाम से प्रकाशित हुए केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी के तत्त्वावधान में कार्यरत दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना द्वारा सन् 1988 ई० में 2 से 8 अप्रैल तक आयोजित सप्तदिवसीय कार्यशाला के विवरण की, निबन्धों और विचार विनिमय में व्यक्त किये गये विचारों की यहाँ संक्षिप्त समालोचना प्रस्तुत की गई है ।]

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ के तत्त्वावधान में कार्यरत दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना द्वारा सन् 1988 ई० में 2 से 8 अप्रैल तक आयोजित सप्तदिवसीय कार्यशाला का विवरण "सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान" शीर्षक से इस संस्थान की 'सम्यक् वाक्' सिरीज के पंचम पुष्प के रूप में परमपावन दलाई लामा जी के पवित्र करकमलों द्वारा 23 दिसम्बर सन् 1990 को लोकार्पित हो चुका है । गोष्ठियों में उपलब्ध निबन्धों का प्रकाशन तो प्रायः हो जाता है, किन्तु इन अवसरों पर टेप की गई पूरी कार्यवाही का बाद में कोई उपयोग नहीं होने पाता । यह संकल्प लिया गया था कि इस कार्यशाला के अवसर पर पढ़े गये निबन्धों के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों के द्वारा व्यक्त किये गये महत्त्वपूर्ण विचारों को भी इन निबन्धों के साथ प्रकाशित कराया जाय । हमें खुशी है कि इस योजना में कार्यरत कर्मठ कार्यकर्ताओं के सहयोग से हम इस संकल्प को कार्यरूप देने में सफल हो सके ।

अपने स्वागत भाषण में इस संस्थान और इस योजना के निदेशक प्रो० एस० रिनपोछे ने कार्यशाला के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहा था कि यह कार्यशाला विशुद्ध रूप से एक बुद्धि-विलास के रूप में न होकर दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना में कार्यरत विद्वानों को दिन-प्रतिदिन के कार्य में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उन समस्याओं पर सम्यक् रूप से विचार-विमर्श का मंच बने और अन्ततः कोई व्यावहारिक समाधान प्राप्त हो सके, इसी दृष्टि से इस कार्यशाला का आयोजन किया गया है (पृ० 2) ।

विचारगोष्ठी और कार्यशाला के अन्तर को स्पष्ट करते हुए एक अन्य प्रसंग में आपने कहा कि विचारगोष्ठी में निबन्ध पढ़े जाते हैं और उनको छाप दिया जाता है । लेकिन कार्यशाला में परिणामोन्मुख वार्तालाप होना चाहिये ।…… प्रमाणसमुच्चय की पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है या रत्नावली की सम्पूर्ण पाण्डुलिपि मिल गई है, इस तरह की नई जानकारियों को हमने नोट कर लिया है ।…… विचारगोष्ठियों में यह सब नहीं होता । वहाँ केवल निबन्ध के विषय तक ही

छिट-फुट चर्चा होती है। कार्यशाला का उद्देश्य अपने स्रोतों का पता लगाकर उनसे सम्पर्क साधना होता है। उस स्रोत के पीछे जाकर हमें उसकी खोज करनी होती है।..... मैं समझता हूँ कि कार्यशाला नाम हमने इसलिये रखा कि कुछ चुने हुए लोगों के साथ मिल-बैठकर बातचीत कर सकें, उनके सामने अपनी समस्याओं को रख सकें और उनके दिये हुए सुझावों के आधार पर हम उनका समाधान कर सकें। इसीलिये इसमें कोई अध्यक्ष नहीं है. उद्घाटन के लिए कोई मन्त्री नहीं बुलाया गया है और न समापन के लिये कोई नेता ही बुलाया गया है (पृ० 92-93)।

उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष प्रो० अनन्तलाल ठाकुर ने इस प्रसंग में बताया कि प्राचीन भारत में परिसंवाद गोष्ठी के लिये 'तद्विद्यसंभाषा' अथवा 'तद्विद्यसंवाद' शब्द प्रयुक्त होता था (पृ० 18)। डॉ० परमहंस मिश्र ने इस प्रसंग में सुझाव दिया कि कार्यशाला का नाम 'कार्यकलाप उत्कर्ष और विमर्श' रखना अच्छा होगा। इसका अभिप्राय यह है कि कार्यकलाप के उत्कर्ष के विषय में यहाँ विमर्श किया जा रहा है (पृ० 93)।

विचारगोष्ठियों में हम देखते हैं कि पूँछे गये प्रश्नों का उत्तर देने की जिम्मेदारी निबन्धवाचक की ही रहती है और इसमें कभी-कभी वितण्डावाद खड़ा हो जाता है। इसके विपरीत कार्यशाला में शंका के समाधान की जिम्मेदारी केवल निबन्धवाचक पर ही नहीं छोड़ी जाती। यहाँ तो सब मिलकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। प्रस्तुत कार्यशाला को प्रधानतः यही रूप दिया गया था। उद्घाटन सत्र के अतिरिक्त अन्य सातों सत्रों के लिये कोई अध्यक्ष नहीं चुना गया था। उसमें निबन्धवाचक को ही प्रधानता दी गई थी। इस कार्यशाला की सफलता इस बात से भी आँकी जा सकती है कि इसमें संमिलित वयोवृद्ध विद्वानों का इसे पूरे समय तक स्वयंस्फूर्त सराहनीय सहयोग मिला और सबने मिलकर उपस्थापित विषयों और समस्याओं पर शान्तिपूर्वक पर्याप्त विचार किया। महाकवि कालिदास की यह उक्ति प्रसिद्ध है—'आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्"। इस कार्यशाला के प्रयोग की साधुता की अनुभूति तब हुई, जब प्रो० नथमल टाटिया ने कहा कि इस प्रकार के विषय पर कोई आयोजन अब तक नहीं के बराबर हुआ है, इसी प्रकार जब प्रो० अनन्तलाल ठाकुर ने कार्यशाला के अन्त में कहा—आनन्द की बात है कि हम लोग यहाँ जल्प और वितण्डा का सर्वथा परित्याग कर सके। "वादे वादे जायते तत्त्वबोध" का जो नियम था, उसका हम लोग अनुसरण कर पाये हैं (पृ० 539-540)।

इस सप्तदिवसीय कार्यशाला के लिये सात विषय निर्धारित किये गये थे। विषय-उपस्थापन (पृ० 5-10) में इसके विचारणीय पहलुओं पर प्रकाश डाला गया था। अब हम यह देखें कि इन विषयों पर कार्यशाला का क्या अवदान रहा है, उससे पहले कुछ सामान्य विषयों की चर्चा कर लेना उपयुक्त होगा। यह बात स्पष्ट है कि सामूहिक सहयोग भावना के बिना अनुसन्धान के क्षेत्र में तीव्र प्रगति नहीं हो सकती। प्रस्तुत कार्यशाला में जापानी विद्वानों के परस्पर

सहयोग की भावना की प्रशंसा की गई और सीलोन से प्रकाशित हुए विश्वकोश संबन्धी कार्य को भी सराहा गया कि कैसे उन-उन क्षेत्रों में किसी एक योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में इस तरह के कार्य अनायास पूरे किये जा सकते हैं। इस प्रसंग में इस बात का भी उल्लेख हुआ कि भारतीयों में इस तरह की भावना कम देखने को मिलती है। यह बात सही हो सकती है, किन्तु हमें इसके कारणों की तह में जाने का प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसा क्यों होता है? हमारी समझ में जहाँ योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में इस तरह के कार्य चल रहे हों, वहाँ इस सहयोग भावना की कमी नहीं रहनी चाहिये। किन्तु भारत का यह दुर्भाग्य है कि यहाँ योग्य व्यक्ति की अपेक्षा अयोग्य व्यक्ति जिम्मेदारी के पदों पर अधिक सरलता से पहुँच जाते हैं। किसी भी क्षेत्र में कहीं भी अखिल भारतीय दृष्टिकोण देखने को नहीं मिलता। एक भाषा और एक संस्कृति के अभाव में सारा देश टुकड़ों में बँटता सा चला जा रहा है। खेल का मैदान हो या कोई भी जिम्मेदारी का पद, सब जगह संकीर्ण प्रादेशिक दृष्टिकोण पर आधारित संकीर्ण भावनाएँ उभर रही हैं। अनेक विश्वविद्यालय नाम वाली संस्थाएँ जनपदों (जिलों) तक सीमित हो गई हैं। इसकी स्वाभाविक परिणति योग्य व्यक्ति की उपेक्षा (तिरस्कार) और अयोग्य व्यक्ति के संमान (पुरस्कार) में होती है। क्या इस परिप्रेक्ष्य में कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति सामूहिक जिम्मेदारी का निर्वाह तहेदिल से कर सकता है? फिर जिस किसी भी योजना में जितने व्यक्ति कार्यरत हैं, उन सबका नामोल्लेख तो अवश्य ही होना चाहिये। दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना में प्रारंभ से ही इस नियम का पालन पूरी तत्परता से किया जा रहा है।

जानकारी के परस्पर आदान-प्रदान के संबन्ध में भी गोष्ठी में विचार हुआ। आलोकमाला, प्रमाणसमुच्चय, तर्कज्वाला आदि ग्रन्थों के तथा देश-विदेश में कार्यरत संस्थाओं और विद्वानों के विषय में कार्यशाला में उपस्थित विद्वानों से पर्याप्त सूचनाएँ मिलीं। यह एक सतत गतिशील प्रक्रिया है। विभिन्न विषयों में कहाँ-कहाँ किन-किन विद्वानों के द्वारा क्या क्या कार्य किये जा रहे हैं, इसकी जानकारी के लिये, इसकी सारी कड़ियों को जोड़ने वाली कोई केन्द्रीय संस्था होनी चाहिये, जिसके माध्यम से इस तरह की सारी सूचनाएँ यथासमय प्राप्त होती रहें। हमने देखा है कि नई सूचनाओं को इसलिये दबा दिया जाता है कि कोई दूसरा व्यक्ति उसमें दखल न देने लगे। भारतीय विद्या की विभिन्न शाखाओं में इतना अधिक काम करना बाकी है कि अभी अनेक वर्षों तक अनेक व्यक्तियों का जीवन इसके लिये पर्याप्त नहीं होगा, किन्तु इस मानवीय मनोवृत्ति से कौन अपरिचित है कि किसी की दुकान को चलता देख दूसरा दुकानदार भी वहीं अपनी दुकान लगा लेता है। इसी मनोवृत्ति के रहते हम तत्काल नई-नई सूचनाओं को पाने से तो वंचित रह ही जाते हैं, व्यर्थ ही एक ही तरह के कार्य की पुनरावृत्ति भी होती रहती है।

प्रसंगवश यहाँ इस विषय की भी चर्चा हुई कि कंग्युर-तंग्युर के कितने संस्करण हैं और उनमें कौन सा संस्करण अधिक प्रामाणिक माना जाता हैं (पृ० 175-176)। ज्ञानोदयतन्त्र,

कालचक्रतन्त्रटीका आदि की भी यहाँ प्रसंगवश चर्चा उठी (पृ० 175) और आगे चलकर इस गोष्ठी में बौद्धतन्त्र और हिन्दूतन्त्र (पृ० 210-213), कौलतन्त्र और अनुत्तरतन्त्र (पृ० 369-373), तन्त्रों का विभाजन और भेद (पृ० 472-476) जैसे विषयों पर भी पर्याप्त विचार किया गया। कामिक से वातुल पर्यन्त 28 द्वैतवादी सिद्धान्त शैवागमों में से आज सभी उपलब्ध नहीं होते, किन्तु जो उपलब्ध हैं, वे सभी क्रिया, चर्या, योग और विद्या (ज्ञान) नाम के चार पादों में विभक्त हैं। यहाँ ये चारों पाद एक ही ग्रन्थ के अंग हैं। विद्या अथवा ज्ञान पाद में उस-उस आगम के दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है।

इसके विपरीत बौद्ध तन्त्रों में क्रिया, चर्या, योग और अनुत्तर विभाग के प्रतिपादक अलग-अलग स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। अनुत्तरतन्त्र के भी पुनः [1]पितृतन्त्र, मातृतन्त्र और अद्वयतन्त्र नामक तीन विभाग किये गये हैं। गुह्यसमाज में हेतुतन्त्र, उपायतन्त्र और फलतन्त्र नामक एक दूसरा ही विभाग उपलब्ध होता है। बौद्ध तन्त्रों को तथागत कुल, पद्म कुल आदि कुलों में भी विभक्त किया गया है। इन सब विभागों और उपविभागों का विशेष परिचय 'धीः' के विभिन्न अंकों में प्रकाशित "बौद्ध तन्त्र साहित्य का वर्गीकरण" (अं० 5, पृ० 63 82), "तन्त्र का स्वरूप एवं आभ्यन्तर भेद" (अं० 4 7,9,11) शीर्षक निबन्धों से प्राप्त किया जा सकता है।

इस पूरी सामग्री को सामने रखकर ज्ञानोदयतन्त्र के विषय में विचार करना पड़ेगा कि इसका समावेश योगतन्त्र में किया जाय अथवा अनुत्तरतन्त्र में। अनुत्तरतन्त्र के मातृतन्त्र पितृतन्त्र और अद्वयतन्त्र नामक किसी भी उपविभाग के अन्तर्गत इसकी गणना नहीं की जा सकती। इसके अन्तिम दो पृष्ठों में कायपूजा का विधान अवश्य मिलता है, किन्तु मात्र इतना देखकर क्या इस पूरे ग्रन्थ को अनुत्तर विभाग में रखा जा सकता है ? क्रिया, चर्या आदि विभागों में विभक्त तन्त्रों में एक बात और भी देखने की है कि क्या इनमें शुद्ध रूप से एक ही विषय का प्रतिपादन किया गया है ? अथवा अन्य विभागों के विषय भी आवश्यकता के अनुसार समाविष्ट हैं ?

मूलतन्त्र, उद्देशतन्त्र, भाष्यतन्त्र और उत्तरतन्त्र नामक विभागों की भी यहाँ (पृ० 472-476) चर्चा हुई और उनका स्वरूप भी बताया गया। सेकोद्देशटीका (पृ० 4-5) में त्रिविध उद्देश और त्रिविध निर्देश तन्त्रों की चर्चा मिलती है। यहाँ उद्देश विभाग के अन्तर्गत समस्त लघुतन्त्रों का तथा निर्देश विभाग में समस्त मूल तन्त्रराजों का समावेश

1. मृगेन्द्रागम के चर्यापाद (1 37,40-41) में वर्णित सिद्धकौल और योगिनीकौल तन्त्रों की तुलना पितृतन्त्र और मातृतन्त्र से की जा सकती है।

किया गया है। अन्य दो विभागों में इनकी पंजिकाओं और टीकाओं की गणना की गई है। समाजोत्तर की गणना उत्तरतन्त्र में की जाती है। अभिधानोत्तर जैसे अन्य उत्तर तन्त्रों के भी नाम हमें मिलते हैं, किन्तु हम देखते हैं कि समाजोत्तर की गणना गुह्यसमाज के व्याख्यातन्त्रों में भी की गई है। समाजोत्तर के अतिरिक्त सन्ध्याव्याकरण, चतुर्देवीपरिपृच्छा, वज्रमाला और वज्रज्ञानसमुच्चय को भी मिलाकर गुह्यसमाज के व्याख्यातन्त्रों की संख्या पाँच मानी गई है। समाजोत्तर को यदि हम उत्तरतन्त्र ही मानें, तो व्याख्यातन्त्र चार ही रह जायँगे। डॉ० एस० बाहुलकर ने इसी पक्ष को स्वीकार किया है (पृ० 164)। तन्त्रभाष्य और भाष्यतन्त्र की भिन्नता पर भी यहाँ प्रकाश डाला गया है (पृ० 174-175)। इस विषय पर अभी और गहरे विचार की अपेक्षा है कि इस विभाग की पुष्टि में शास्त्रीय प्रमाण भी प्रस्तुत किये जा सकें।

यहाँ वर्गीकरण (पृ० 439-440) अथवा विषयविभाजन (पृ० 460) के लिये डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची के प्रमाण से संमोहनतन्त्र को उद्धृत किया गया है। 'तान्त्रिक साहित्य' की भूमिका (पृ० 24 25) में भी इस तन्त्र के आधार पर दिया गया तन्त्रों के भेदों और उपभेदों का विवरण मिलता है। डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने इस संमोहनतन्त्र को कम्बुज शिलालेख में उद्धृत संमोहतन्त्र से अभिन्न मानकर ऐसा किया है। वास्तव में ऐसा है नहीं। जिसको यहाँ संमोहनतन्त्र नाम दिया गया है, वह वस्तुतः शक्तिसंगमतन्त्र के चतुर्थ छिन्नमस्ता खण्ड से अभिन्न है। इस ग्रन्थ के उपोद्घात में हमने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि यह एक अतिनवीन [1]तन्त्र-ग्रन्थ है। इसके आधार पर प्रदर्शित वर्गीकरण को हम तन्त्र-ग्रन्थों के भोट अनुवादों के वर्गीकरण के प्रसंग में किसी भी रूप में प्रमाण नहीं मान सकते, क्योंकि भोट देश में जब तन्त्र-ग्रन्थों का अनुवाद कार्य पूरा हो चुका था, उसके बहुत समय बाद यहाँ इस तन्त्र का आविर्भाव हुआ है।

कार्यशाला के लिये जिन सात विषयों का निर्धारण किया गया था, उनमें से अनेक विषय एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। अतः प्रायः प्रत्येक निबन्ध में मुख्य विषय के अतिरिक्त उससे जुड़े अन्य विषयों की भी चर्चा हुई है, उन पर विचार-विनिमय हुआ है और अनेक नई नई सूचनाएँ हमें मिली हैं। इन सब पर एक साथ विचार करने की आवश्यकता है। जैसे कि कार्यशाला का पहला विचारणीय विषय था – पाण्डुलिपियों का स्रोत और उनका वर्गीकरण। इस विषय पर यहाँ तीन निबन्ध प्रस्तुत हुए और उन पर हुए विचार-विनिमय से भी हमें अनेक सूचनाएँ मिलीं (पृ० 19-94)। किन्तु इस विषय की चर्चा यहीं तक सीमित नहीं रही, अन्यत्र भी प्रसंगानुसार इनका उल्लेख हुआ। जैसे कि प्रो० नथमल टाटिया ने जैसलमेर के जैन भण्डारों

---

1. शक्तिसंगमतन्त्र, चतुर्थ छिन्नमस्ता खण्ड का संस्कृत उपोद्घात (पृ० 8-9) तथा तन्त्रयात्रा (पृ० 106-111) में प्रकाशित "संमोहनतन्त्रं शक्तिसंगमतन्त्रादभिन्नम्" शीर्षक निबन्ध देखिये।

का उल्लेख किया (पृ० 14), जहाँ कि अनेक महत्त्वपूर्ण प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। पाटण के जैन भण्डारों को भी हम इसी कोटि में रख सकते हैं।

तर्कज्वाला का हस्तलेख महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को मिला या नहीं, इस विषय पर कार्यशाला में निरन्तर दो-तीन दिन तक विचार चलता रहा। ऐसा लगता है कि प्रो० एस० रिनपोछे ने इस विषय में जो कुछ कहा (पृ० 55), वही सत्य है।

हस्तलेखों की उपलब्धि और स्थिति के सम्बन्ध में डॉ० के० वी० शर्मा के निबन्ध के प्रारंभ में (पृ० 134-135) भी पर्याप्त लिखा गया है। इसी तरह से एक ही ग्रन्थ के संक्षिप्त और विस्तृत संस्करणों की तथा एक ही ग्रन्थ की दो या इससे अधिक नामों से उपलब्ध पाण्डुलिपियों की चर्चा प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी के निबन्ध के प्रारम्भ (पृ० 185-188) में की गई है। वहाँ यह भी बताया गया है कि किस प्रकार हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचियों में गलत नाम अंकित हो जाते हैं (पृ० 199)। डॉ० भागीरथप्रसाद त्रिपाठी (वागीश शास्त्री) ने पुस्तक, ग्रन्थ या पाण्डुलिपि शब्दों की विशिष्टताओं को स्पष्ट करते हुए बताया है कि इनके कितने प्रकार होते हैं और इसके लिये 'मातृका' शब्द क्यों प्रचलित हुआ (पृ० 279-283)। इसी निबन्ध (पृ० 282) में और इससे सबद्ध विचार-विनिमय (पृ० 306) में स्कन्दपुराण की प्राचीन पाण्डुलिपि की चर्चा आई। डॉ० के० वी० शर्मा के ही दूसरे निबन्ध में सम्पादन प्रक्रिया के विवरण के प्रसंग में हस्तलेखों के चयन में बरती जाने वाली सावधानी का उल्लेख किया है (पृ० 313-315)। इसी तरह से कार्यशाला के पंचम दिन सम्पन्न हुए सिंहावलोकन में भी पाण्डुलिपियों के स्रोतों के विषय में पर्याप्त विचार हुआ है (पृ० 341-346)। यहाँ हस्तलेखों में प्राप्त होने वाले काकपद, हंसपद आदि चिह्नों के विषय में भी चर्चा हुई (पृ० 352)। इसी प्रकार डॉ० बी० एन० टण्डन के निबन्ध में विविध तालपत्रीय हस्तलेखों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया (पृ० 491-495)। अन्ततः कार्यशाला द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव की दूसरी और तीसरी धारा में भी इस विषय की चर्चा आई है।

इस देश के स्वतन्त्र होने से पहले हस्तलेखों की खोज के लिये विदेशी शासन और विद्वानों ने पर्याप्त प्रयास किया था, किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ ही इस शुभ कार्य पर विराम चिह्न सा लग गया है। इस दुःस्थिति की थोड़ी सी झलक हम डॉ० गयाचरण त्रिपाठी (पृ० 66-67) और प्रो० एस० रिनपोछे (पृ० 91-92) के अनुभवों में देख सकते हैं। पाण्डुलिपियों का धनी विस्तृत भूभाग धीरे-धीरे हमारी पहुँच से बाहर होता चला जा रहा है। अब तो इस स्थिति में हम पहुँच गये हैं कि अपने देश में संगृहीत इस सम्पदा की भी ठीक से देख-रेख नहीं कर पा रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्तिगत संग्रहों, धार्मिक स्थलों आदि में उपेक्षा की शिकार इस सम्पत्ति की रक्षा के लिये हम दत्तचित्त हों।

इस प्रसंग में प्रो० अनन्तलाल ठाकुर द्वारा व्यक्त किये गये विचार अत्यन्त मननीय हैं (पृ. 67-69)। यहां इन्होंने कहा है—"शिलालेख और ताम्रलेख अब मिल नहीं रहे हैं। जो मिले हैं, उन पर काम हो चुका है। (नई) सामग्री अब आगे मिलने वाली नहीं है। पोथियों में ऐसी सामग्री अजस्र है (पृ. 68)। इसके उदाहरण के रूप में हम पूना के भाण्डारकर इंस्टीटयूट के पूर्व क्यूरेटर डॉ० पी० के० गोडे का स्मरण कर सकते हैं। इन्होंने इस संस्थान के पुस्तकालय में संगृहीत पाण्डुलिपियों की पुष्पिकाओं के आधार पर इतिहास की अनेक गुत्थियों को सुलझाया है और इस दिशा में हमारा पथप्रदर्शन किया है कि हम इस सामग्री का उपयोग कैसे कर सकते हैं[1]। लगता है उनकी यह विधा उनके साथ ही चली गई है, क्योंकि इस क्षेत्र में अन्य किसी विद्वान् ने पदार्पण किया हो, ऐसा लगता नहीं।

दाराशिकोह के विद्यागुरु सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वती के हस्तलेखों की भी यहां चर्चा हुई (पृ 59 69-70)। देश और विदेश के हस्तलेखों का संग्रह करने वाले विद्या-संस्थानों के सहयोग से हम अब भी इस महान् विद्याप्रेमी के संग्रह रूपी मुक्तादाम की बिखरी मणियों को जोड़कर उनकी नई माला गूँथ सकते हैं।

डॉ० जगदीश्वर पाण्डेय ने शंकरनन्दन के बौद्ध न्याय के दस निबन्ध ग्रन्थों की और उनमें से कुछ के नामों की सूचना दी है, जिनमें एक प्रज्ञालंकार भी है (पृ० 80)। शंकरनन्दन के प्रज्ञालंकार को अभिनवगुप्त[2] भी स्मरण करते हैं और वे इसको [3]भाट्टदर्शन का ग्रन्थ मानते हैं। वे यह भी बताते हैं कि शंकरनन्दन ने धर्मोत्तर के मत का खण्डन किया है। यह तो हम लोग जानते ही हैं कि धर्मोत्तर धर्मकीर्ति के न्यायबिन्दु के व्याख्याकार हैं। शंकरनन्दन

---

1. "स्टडीज इन इण्डियन लिटररी हिस्ट्री" नाम से एकाधिक खण्डों में प्रकाशित इनके ग्रन्थ में इस प्रकार के सभी निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है।
2. लुप्तागमसंग्रह, द्वितीय भाग, संस्कृत उपोद्घात (पृ. 49-50) देखिये।
3. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी (भा० 2, पृ० 144) में अभिनवगुप्त ने 'प्रज्ञालङ्कारादिषु भाट्टदर्शनेषु" लिखा है। अपनी निबन्धावली (पृ० 22) में ज्ञानश्रीमित्र शंकर को नैयायिकप्रवर कहते हैं। इस ग्रन्थ के संस्कृत उपोद्घात (पृ० 54) में इनको "आक्षपादीयन्यायवेदिकास्तम्भ" जिस प्रमाण के आधार पर कहा है, वहाँ का पाठ—"दुर्नीताश्रमवेदिकादृढतरस्तम्भान्" (पृ० 159) है। ज्ञानश्रीमित्र शंकर, भूषणकार (भासर्वज्ञ), त्रिलोचन और वाचस्पति को वर्णाश्रमरूपी वेदिका के दृढ स्तम्भ मानते हैं और उनके मत को उद्धृत कर पदे-पदे उनका खण्डन करते हैं। शंकर के 'स्थिरसिद्धि' नामक ग्रन्थ को भी ये उद्धृत करते हैं (पृ० 23)। इस ग्रन्थ का नाम डॉ० जगदीश्वर पाण्डेय की सूची में नहीं है। इस पृष्ठभूमि में शंकरनन्दन के इन ग्रन्थों का महत्त्व बढ़ जाता है। उनको देखकर ही हम किसी सही निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं।

की प्रशंसा में अभिनवगुप्त कहते हैं कि इन्होंने प्राक्तन कुशल कर्मों के परिपाक-स्वरूप अद्भुत प्रतिभा प्राप्त की थी। वे एक स्थान पर इनको गुरु के रूप में भी स्मरण करते हैं। नरेश्वरपरीक्षा के टीकाकार भट्ट रामकण्ठ भी धर्मोत्तर की समालोचना के प्रसंग में अलंकारकार को स्मरण करते हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हस्तलेखों के संग्रह में शंकरनन्दन का ईश्वरा-पाकरणसंक्षेप नामक मीमांसा का ग्रन्थ उपलब्ध है। हमें इस ग्रन्थ की और तिब्बत से प्राप्त उक्त ग्रन्थों की इस दृष्टि से परीक्षा करनी चाहिये कि प्रज्ञालंकारकार और शंकरनन्दन एक ही व्यक्ति हैं या दो अलग-अलग व्यक्तित्व। स्मरण रखने की बात यह है कि डॉ० जगदीश्वर पाण्डेय कहते हैं कि इनका भोट अनुवाद नहीं हुआ है और इनकी दी हुई नामावली में अपोहसिद्धि भी एक ग्रन्थ है।

भारतीय लिपियों और उनकी समस्याओं पर हमें मात्र एक निबन्ध मिला। निबन्ध और विचार-विनिमय (पृ० 95-132) में सिन्धुघाटी की लिपि, ब्राह्मी लिपि आदि से लेकर आधुनिक नेवारी लिपियों तक के विषय में पर्याप्त चर्चा हुई और यह भी बताया गया कि वर्तुल एवं लंछा इन दो लिपियों के आधार पर तिब्बती लिपि का आविष्कार किया गया था। विभिन्न नेवारी लिपियों, प्राचीन बंगला और मैथिली लिपि विषयक चर्चा का स्तर काफी अच्छा रहा। हम जानते हैं कि बौद्ध पाण्डुलिपियां प्रायः इन्हीं लिपियों में लिखी मिलती हैं। महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा लाई गई अधिकांश पाण्डुलिपियां प्राचीन मिथिला लिपि में लिखी गई हैं।

अपने उद्घाटन भाषण में डॉ० नथमल टाटिया ने बताया कि केवल लिपि का सीख लेना ही पर्याप्त नहीं है, उस भाषा का ज्ञान भी आवश्यक है (पृ० 13)। इस बात को अन्य अनेक निबन्ध लेखकों ने भी अंकित किया कि प्रतिलिपि तैयार करने वालों को भाषा का ज्ञान न होने से अनेक प्रकार की त्रुटियाँ आ जाती हैं और इसी के कारण पाठ-संकलन करना भी एक कठिन काम हो जाता है। इस प्रकार की समस्याओं की चर्चा डॉ० के० बी० शर्मा के (पृ० 136-140) तथा डॉ० वागीश शास्त्री के निबन्ध (पृ० 276-279) में विशेष रूप से हुई है और इससे लिपि-विषयक अध्ययन को आगे बढ़ाने में सहायता मिली है।

यहाँ विभिन्न स्तरों पर हुए विचार-विनिमय में नन्दिनागरी और भूतलिपि की भी चर्चा हुई। इनमें से भूतलिपि तो कोई लिपि नहीं है, इसकी चर्चा यहाँ आ चुकी है (पृ० 306)। इस विषय में विशेष रूप से इतना ही कहना है कि पाणिनि व्याकरण के 14 प्रत्याहार सूत्रों में जिन 42 वर्णों का परिगणन किया गया है, ठीक वे ही वर्ण भूतलिपि में भी विन्यस्त हैं। इस विषय में अभी विशेष अनुसन्धान अपेक्षित है। नन्दिनागरी में लिखे कुछ हस्तलेखों का

अवलोकन हमने होशियारपुर के वैदिक शोध संस्थान में किया था। डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के ग्रन्थ "भारतीय प्राचीन लिपिमाला" में इस लिपि का परिचय देते हुए लिखा है कि विजयनगर के राजाओं के दानपत्रों की नागरी लिपि नन्दिनागरी कहलाती है और अब तक दक्षिण में संस्कृत पुस्तकों को लिखने में उसका प्रचार है (पृ० 68)।

प्राचीन लिपियों का पढ़ना धीरे-धीरे एक समस्या होती जा रही है। काशी नगरी में प्रायः सभी लिपियों के पढ़ने वाले विद्वान् मिल जाते थे, किन्तु अब उनकी संख्या शून्य के आसपास पहुँचने जा रही है, जब कि यहाँ चार-चार विश्वविद्यालय और हस्तलेखों का संग्रह करने वाले अनेक पुस्तकालय हैं। इस अभाव की पूर्ति के लिये प्रो० अनन्तलाल ठाकुर, डॉ० गयाचरण त्रिपाठी और डॉ० जगदीश्वर पाण्डेय ने तो अपना-अपना व्यक्तिगत सहयोग और सहायता देने का आश्वासन दिया ही, कार्यशाला में भी इस विषय पर एक प्रस्ताव रखा गया कि इस संस्थान में लिपियों के प्रशिक्षण के लिये समय समय पर निश्चित अवधि के आयोजन किये जाँय। इनमें विभिन्न नेवारी लिपियों के अतिरिक्त प्राचीन बंगला और मैथिली लिपि को प्राथमिकता दी जाय। प्रस्ताव पर बोलते समय विद्वानों ने ब्राह्मी और शारदा लिपि के प्रशिक्षण पर भी जोर दिया (पृ० 532–533)। हम समझते हैं कि इस संस्थान में इस तरह के आयोजन निकट भविष्य में अवश्य किये जायँगे।

(क्रमशः)

རྩོམ་ཁྲི་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྡུས།

ཡི་གེ་བདུན་པའི་བསྟོད་པ། (༡)

བསྟོད་པ་འདི་ནི་སྐུ་ཀ་ཤེཀས་ཛགནྣཱཐཨུཔཏྟཱལ (འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ) མཆོག་གི་སྐུ་སྐྱེར་དཔེ་མཛོད་ནས་རྙེད་པ་ཡིན།

དཔལ་གདུམ་དབྱུག་མའི་བསྟོད་པ། (༢–༣)

བསྟོད་པ་འདི་ནི་ཨིན་ཊིཡན་ཨེཊལཱཾ་སྲས་ཊཊིས ཨཱཕ ཕྲེནྩཊརིའིཛནས ནུ་ཡཀྐ་ནས་རྙེད་པའི་གཟུང་སྔགས་ལ་སོགས་ཕྱོགས་བསྡུ་ཞེས་པའི་གསུང་ཚོར་བུ……… ཕྱོགས་བདུས་བྱས་པ་ལས་རྙེད་སོན་བྱུང་བ་ཡིན།

ཆོས་དཀོན་པའི་དཔེ་དེབ་ཁག་གི་ངོ་སྤྲོད། (༤–༡༦)

སྔཿ དུས་དེབ་འདིའི་ནང་གཞམ་གསལ་ཆོས་དཀོན་པའི་དཔེ་དེབ་བདུན་གྱི་ངོ་སྤྲོད་ཐུས་ཡོད།

༡ རྒྱུད་ཆུང་ངུའི་འགྲེལ་པ། ཕྱུག་ན་རྡོ་རྗེས་མཛད་པ།

༢ བདེ་མཆོག་བྱུང་བའི་མཚན་བྱ།

༣ བཅོམ་ལྡན་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་ སྒྲུབ་ཐབས། པནྚིཏ་ཆེན་པོ་ཆོས་བྱེད་ཞི་བའི་ཞབས་ཀྱིས་མཛད་པ།

༤ ལྷ་མོ་བདག་མེད་མའི་སྙིང་པོའི་སྔགས།

༥ གསང་ཆེན།

༦ ནོར་རྒྱུན་མའི་རྟོག་པ།

༧ གཟུངས་སྔགས་ལ་སོགས་ཕྱོགས་བསྡུ (ཐོར་བུ་བསྡུས་པ)། འདིའི་ནང་

དགེ་དེབ་ཆ་ཚང་བ་བཅོ་བརྒྱད་དང་མ་ཚང་བ་དགུའི་འགྲེལ་བརྗོད་བྱས་ཡོད།

ནང་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཁག་ཕྱོགས་བདུས། (༡༧–༢༨)

ནྲཱིཿ དུས་དེབ་སྔ་མ་རྣམས་ལྟར་དུས་དེབ་འདིའི་ནང་དུའང་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཁག་ཕྱོགས་བསྡུས་བྱས་ཡོད། དུས་དེབ་འདིའི་ནང་དུ་རིམ་པ་དང་ལེགས་བཤད་བསྡུས་པར་འཁོད་པའི་མདོ་རྒྱུད་ཀྱི་གསུང་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད།

ནང་པའི་ཐུན་མོང་མིན་པའི་ཚོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ། (༢༤–༤༦)

ནྲཱིཿ དུས་དེབ་སྔ་མ་རྣམས་སུ་འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་······ མང་པོ་ཞིག་ནས་གལ་ཆེའི་ཐུན་མིན་ཚོས་ཚིག་ཁག་གི་རྣམ་བཤད་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད། དུས་དེབ་ཨང་བཅུ་པའི་ནང་དུ་སློབ་དཔོན་ཉི་མ་དཔལ་གྱིས་མཛད་པའི་དཔལ་མཚན་བརྗོད་ཀྱི་འགྲེལ་པ་བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་དྷ་བ་ཧྲ་མ······ པའི་སློང་པོ་ནས་ཕྱོགས་བསྡུས་བྱས་པའི་ཐུན་མིན་ཚོས་ཚིག་ཁག་གི་རྣམ་བཤད་རྣམས······ ཀ་མད་རིམ་པས་པ་བར་དུ་བཀོད་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་སྐབས་འདིར་འཕྲོས་ཞུས་རྣམས········ བཀོད་ཡོད།

ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་རྣམས་སུ་གནས་དང་ཉེ་བའི་གནས་སོགས་ཀྱི་བཤད་པ། (༤༧–༦༡)

གནས་དང་ཉེ་གནས་སོགས་ཀྱི་བཤད་པའི་སྐོར་ལ་དུས་དེབ་སྔ་མའི་ནང་དུ་ཧེ་རུ་ཀའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་གནས་པའི་དཔའ་མོ་རྣམས་ཀྱི་སྐོར་གསལ་ཡོད་ཅིང་། རིམ་པ་འདིའི་འོག་དུས་དེབ་འདིའི་ནང་བདེ་མཆོག་དཀྱིལ་འཁོར་ལྟར་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་གནས······ པའི་དཔའ་བོ་རྣམས་ཀྱི་ངོ་བོའི་སྐོར་རྣམ་བཤད་བྱས་ཡོད། གནས་རྣམས་ཀྱི་ས་ཆའི་སྐོར་དཔྱད་པ་བྱ་དགོས་དང་གནད་འགག་སྐོར་ལའང་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད།

ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་རྣམ་དཔྱད། (༦༢–༧༠)

ནྲཱིཿ དུས་དེབ་དགུ་པའི་ནང་ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་མཚན་གྱི་ངེས་ཚིག་དང་། རྣམ་གྲངས། དབྱེ་བ་དང་མདོ་དང་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་སུ་གདན་ལ་ཕབ་པའི་ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་

ངོ་བོའི་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་དུས་རབ་བཅུ་པའི་ནང་དུ་ཕྱག་རྒྱ་ཆེན······
པོའི་རྒྱུད་པ་དང་སྒྲུབ་ཐབས་སྣ་ཚོགས་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད།   རིམ་པ་འདིའི་
འོག་སྐབས་འདིར་གསུང་རབ་སྣ་ཚོགས་ནས་རྟེད་པའི་ཁུངས་རྣམས་གཞི་རྟེན་དུ་བྱས་པའི་
ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་སྐོར་རྣམ་དཔྱད་མདོར་བསྡུས་བྱ་རྒྱུའི་འབད་རྩོལ་བྱས་ཡོད།

འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པའི་ཚིགས་བཅད་ཕྱེད་མའི་ཀ་མད་རིམ་པ། (༥༧_༥༨)

འཕགས་པ་འཇམ་དཔལ་གྱི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པའི་གསུང་རབ་འདི······
ནི་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་སུ་ཤིན་ཏུ་གྲགས་ཆེ་བ་ཞིག་ཡིན།   དཔེ་གཟུགས་ཆུང་
ཡང་བརྗོད་བྱ་ཟབ་གནད་ཆེ་བས་འདི་ནི་ནང་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་པོ་ལྟ་བུར······
གྲགས།   ནང་པའི་རྗེས་དགོན་པའི་གསུང་རབ་ཅམས་ཞིབ་འཛར་གཞིའི་དུས་རབ་ཨང······
དང་པོ་དང་གསུམ་པ་བཞི་པ་བཅས་སུ་མཚན་བརྗོད་ཀྱི་ཐོས་བསམ་ལ་སྨན་པའི་ཆ་རྐྱེན······
ཞེས་པའི་འགོ་བརྗོད་འོག་འདིའི་སྐོར་རྒྱས་བཤད་བྱས་ཡོད།   མཁས་དབང་མང་པོ་
ཞིག་ནས་གསུང་རབ་འདིའི་ཞུ་སྒྲིགས་ཀྱང་མཛད་འདུག

གསུང་རབ་འདི་ཡོངས་སུ་གྲགས་ཆེ་བས་རྒྱུད་གཞུང་འགྲེལ་བྱེད་རྣམས་ཀྱིས······
འགྲེལ་པ་དང་མཆན་འགྲེལ་རྣམས་སུ་འདིའི་ལུང་མི་ཉུང་ངར་དྲངས་འདུག   དུས་འཁོར་
རྒྱུད་འགྲེལ་དྲི་མེད་འོད་ཀྱི་འགྲེལ་བ་མཛད་པ་པོས་ནི་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པ་འདི······
ཉིད་ཚད་དུ་བཞག་ནས་དུས་འཁོར་གྱི་ཚིག་དོན་བཀྲལ་བར་མཛད་ཅིང་སྐབས་སྐབས་སུ······
རང་གི་ཚིག་རྣམས་ཀྱི་སྒྲུབ་བྱེད་དུ་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པའི་གསུང་རྣམས་ལུང་དུ······
དྲངས་པར་མཛད་འདུག   སྐབས་རེར་སྒྲ་འཕྲུལ་དྲ་བ་དང་སྐབས་རེར་ལེའུ་རྣམས་ཀྱི་མཚན་
ཐོག་ནས་ཀྱང་འདིའི་ལུང་རྟེད་ཀྱི་འདུག   ཀློག་པ་པོ་རྣམས་ལ་ཚིག་འདི་དག་དཀའ་ཚོགས་
ཆུང་ངུས་ཉིད་ཐབས་སུ་དམིགས་སྐབས་འདིར་ཚིགས་བཅད་རྣམས་ཀྱི་གྲངས་དང་ལེའུ······
རྣམས་གཞི་རྟེན་དུ་བྱས་པའི་ཚིགས་བཅད་ཕྱེད་མའི་ཀ་མད་རིམ་པ་བཀོད་ཡོད།

ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཁག་གི་རྩ་བའི་མ་དཔེ། (༨༨–༡༡༩)

འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་ན༔ དུས་རབས་བཅུ་པའི་ནང་ཨེ་ཤི་ཡ་དང་། ཡུ་རོབ། ཨ་མེ་རི་ཀ་བཅས་ཀྱི་ཆེས་ས་ཐག་རིང་བའི་དཔེ་མཛོད་སྣ་ཚོགས་སུ་བཞུགས་པའི་ནང་པའི་…… བསྡོད་པ་གལ་ཆེའི་ལག་བྲིས་གསུང་རབ་༡༨༢ ཙམ་གྱི་གནས་ཚུལ་བཀོད་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་ སྐབས་འདིར་དེའི་འབྲིས་བསྡོད་པའི་གསུང་རབ་གཞན་རྣམས་ཀྱི་རྩ་བའི་མ་དཔེའི་སྐོར་…… བཀོད་ཡོད།

ནཱ་རོ་ཆོས་དྲུག་ལས་བར་དོ་འི་སྐོར། (༡༣༠–༡༣༣)

ན༔ དུས་རབས་སྔ་མ་བཞིའི་ནང་ནཱ་རོ་ཆོས་དྲུག་ལས་ངཞིའི་སྐོར་གསལ་ངང་ཤད…… ཏྲས་ཡོད་ཅིང་སྐབས་འདིར་ལྡེ་པ་ངར་དོ་འི་སྐོར་ངཀོད་ཡོད། ཆཱ་རར་ངཛྷུ་ན་ངར་རཱ་འི་ གདམས་པ་ནི་སྐུ་གསུམ་གྱི་ཚུལ་དུ་ཉམས་བཞེས་བྱེད་ཐུབ་སྟེ་དེ་ཡང་།

༡ འཆི་བ་ཆོས་སྐུ།

༢ བར་དོ་ལོངས་སྐུ།

༣ སྐྱེ་བ་སྤྲུལ་སྐུ་བཅས་ཡིན་པ་ལྟར་བར་དོ་འི་གདམས་པ་འདི་ནི་མཐར་ཐུག་… སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྐུ་གསུམ་ཐོབ་པའི་ལམ་སྨད་དུ་བྱུང་བ་ཞིག་ཡིན།

ནང་པའི་དོ་ཧ་རྣམས་སུ་དཔེ། (༡༣༣–༡༥༦)

ནང་པའི་གྲུབ་ཐོབ་རྣམས་ཀྱིས་རང་གི་ཉམས་རྟོགས་རྣམས་དོ་ཧའམ་ཉམས་…… མགུར་གྱི་ཚུལ་དུ་གསུངས་ཤིང་། དོ་ཧ་འདི་རྣམས་སུ་དོན་མང་པོ་ཞིག་གོ་བའི་ཐབས་ ཚུལ་སྣ་ཡོ་དང་སྙན་འཇེབས་ལྡན་པའི་སྒོ་ནས་དོན་གཉེར་ཅན་རྣམས་ལ་ཕན་ཐབས་ཀྱི…… ཐུགས་བརྩོན་མཛད་འདུག་རྩོམ་བྲིས་འདིའི་ནང་བོད་སྐད་དུ་བསྒྱུར་ཡོད་པའི་དོ་ཧའི…… གཞུང་རྣམས་གཞི་རྟེན་དུ་བྱས་ཏེ་གྲུབ་ཐོབ་རྣམས་ཀྱིས་བེད་སྤྱོད་མཛད་པའི་དཔེ་རྣམས་ཀྱི་ སྐོར་ལ་རྣམ་བཤད་མདོར་བསྡུས་བྱ་རྒྱུའི་འབད་རྩོལ་དང་། གྲུབ་ཐོབ་རྣམས་ཀྱིས་གཞུང་

དོན་བཀྲལ་བར་དཔེ་རྣམས་ཇེ་ལྟར་འགོད་ཚུལ་དང་།   དཔེའི་སྒོ་ནས་གཞུང་དོན་ཇི་ལྟར་གཏན་ལ་ཕབ་ཚུལ་སོགས་ཀྱི་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད།   མཇུག་ཏུ་བོད་གཞུང་ནང་རྙེད་པའི་ཆ་རྐྱེན་རྣམས་ཀྱི་དཔེ་ཐོ་ (དཀར་ཆག) ཞིག་ཀྱང་བཀོད་ཡོད།

རྒྱུད་ཀྱི་ངོ་བོ་དང་ནང་གསེས་དབྱེ་བ། (༡༣༧-༡༤༧)

གོང་གསལ་འགོ་བརྗོད་འོག་ནྡྲཱིཿ དུས་རིབ་སྤྲ་མ་ཐཆ་ས་རྒྱུ་བྱ་བྱུད་འ་རོག་ས…… པའི་ངོ་བོ་དང་། ནང་གསེས་དབྱེ་བ། དེའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ལམ་བཅས་ཀྱི་སྐོར་ལ་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྡུས་བྱས་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་སྐབས་འདིར་ཡང་རིམ་པ་དེའི་ཁོངས་རྣལ་འབྱོར་རྒྱུད་ཀྱི་ངོ་བོ་དང་། མངོན་འབྱུང་དང་། སྒྲུབ་ཐབས་ལ་སོགས་པའི་སྐོར་མདོར་བསྡུས་ཐོག་གསལ་བཤད་བྱ་རྒྱུར་འབད་རྩོལ་བྱས་ཡོད།

ཞུ་སྒྲིགས་བྱ་ཚུལ་གྲུབ་མཐའ་དང་དེའི་ཐབས་ཚུལ་ལ་བལྟ་ཞིབ། (༡༤༨–༡༦༦)

ཡྲཱ་ཁ་དབུས་ངོད་ཀྱི་ཇེས་མཐོ་འི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ཁོངས་ལས་ཀ་བྱེད་… བཞིན་པའི་ནང་པའི་ཆེས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཚར་གཞིའི་ངོས་ནས་ཕྱི་…… ལོ་ ༡༩༨༨ ཟླ་བ་༣ པའི་ཚེས་ ༢–༨ བར་གོ་སྒྲིགས་ཞུས་པའི་ཉིན་བདུན་གྱི་བགྲོ་གླེང་ལས་གྲུའི་འགྲེལ་བཤད་དང་རྩོམ་ཡིག་གྲོས་བསྡུར་བཅས་སྤྱི་ཐོན་པའི་དགོངས་འཆར…… རྣམས་ཀྱི་སྐོར་སྐབས་འདིར་རྣམ་དབྱེད་མདོར་བསྡུས་བྱས་ཡོད།

ABSTRACTS OF THE ARTICLES

Saptākṣara-Stotram 1

This hymn occurs in the private collection of Prof. J. Upadhyaya.

Śrī-Caṇḍikādaṇḍaka-Stotram 2-3

This hymn has been taken from the hymnal text titled *Dhāriṇī-mantra-ādisaṁgrah* obtained from the Advanced Study of World Religions, New York, U S A.

Introduction of Rare Texts 4-26

Seven rare texts are reported in the present issue of *Review*, viz.

1. Laghutantraṭikā-Vajrapāṇi as commentator
2. Saṁvarodaya Ṭippaṇī
3. Kālacakra bhagavatsādhanāvidhi of Mahāpaṇḍita Dharmākara Śāntipāda
4. Nairātmādevihṛdayamantra
5. Rahasya-Kallolinī
6. Vasudhārā Kalpa
7. Dhāriṇī mantra-ādisaṁgrah (tracts). It has 18 complete and 9 incomplete texts.

The lost Bauddha-Vacanas 27–34

The present issue consists of insertions regarding lost Bauddha-Vacanas as previously initiated. Collected are the sūtras from *Subhāṣita Saṁgrah* and tantra excerpts.

Glossary of Buddhist Technical Terms 35–56

Under the present theme the foregone issues have brought out definitions and elaborations of technical Buddhist terms which occur in different Buddhist esoteric treatises.

Exposition of Pīṭha-Upapīṭha Specifics in Bauddha Tantras 57-62

In the previous issue forms of Vīreśvaries occurring in the maṇḍala of Heruka were stated while dealing with the Pīṭha-Upapīṭha specifics. We recall here the *dhyānas* of Vīras as they are found in the *Saṁvara Maṇḍala.* The importance and geographical significance of pīṭhas have also been substantially pointed out.

In the context of Mahāmudrā (Great Seal) its specifications like derivation, synonymical distinctions and forms as elaborated in the Sūtra and Tantra texts were brought in the 9th issue of the *Review*. The 10th issue highlighted the tradition of *Mahāmudrā* and how to inculcate it in yogic practice. Same norms are followed in the exposition of the *Mahāmudrā* visualisation.

This is one of the foremost esoteric texts of Bauddha Tantra. It is the essence of Bauddha Tantra which despite its smallness of size is verily very deep in meaning and postulate. The theme was introduced to this journal in its 1st, 3rd and 4th issues under the title *Source Material for Nāmasaṃgīti*. The work has been edited by more than one scholar.

The importance of the work is known by fact that commentators of tantric works have cited it copiously in their compositions. The commentator of *Kālacakra-tantra ṭīkā-Vimalaprabhā* define the Kālacakra padas on the authority of the Nāmasaṃgīti and substantiate their statements by its elegant expressions. Its statements are referred by the term Māyājāla and some of its chapters.

To facilitate scholars the half-verse index has been improvised based on the actual verses and their chapter indices.

The 10th issue of this journal enfolds descriptions of about 153 important mss. of Buddhist hymnal texts preserved in the library archives of various Asian, European and American countries. Further information of the basic material of rare hymnal texts is processed in this issue.

Four yogic practices of Naropa's meditative system have been delineated in four previous issues and, now the fifth *Bardo* is described. Realisation through it obtains in three specific ways :

1. The Dharmakāya in the *Bardo* state,
2. The Sambhogakāya in the *Bardo* state,
3. The Nirmāṇakāya while taking birth.

Thus, this is a way which points to the *trikāya* transference of consciousness.

Simile in Bauddha Dohās 133–146

The Buddhist siddhas expressed their experiences through lyrical compositions in the *dohā* metre. The method was found appropriate for conveying the truth hidden in the recondite subjects which could not have found easier way to express their meanings that the simple words of siddhas.

The present essay comprehends the nature and signification of *similes* used in these *Dohā* texts. The expressions have been taken from the translated material in Tibetan.

Nature and Orders of Tantra 147–157

A thematic study of the nature of 'Kriyātantra' and other tantra-forms and their offshoots and methods of practice occurs in previous issues. The order is repeated here to highlight the conceptual methods of yogic accomplishments.

Elements and Practices of Editing 158-166

The Rare Buddhist Texts Research unit of the Institute projected a workshop on the above theme during 2-8 April 1988, which published its entire result in a condenesed form as *Sampādana Ke Siddhānta Aura Upādāna*. A succinct account of it is given here.

•